विषय-सूची प्रश्न

१ जीवन परिचय—रत्नाकर

१—"'रत्नाकर' जी पुराने खेमे के कवियों में सर्व श्रेष्ठ कवि हैं"। उद्धव शतक की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए इस कथन की पुष्टि कीजिये।

२—'उद्धवशतक' के काव्य गुणों का विश्लेषण करते हुये हिन्दी के भ्रमर गीत साहित्य में उसका स्थान निर्धारित कीजिये।

३—उद्धव-गोपी संवाद विषयक हिन्दी की अन्य रचनाओं से तुलना करके 'उद्धव शतक' के विषय प्रतिपादन की विभक्तता बतलाईये।

४—"उद्धवशतक में रीतिकालीन कलेवर में भक्तिकालीन आत्मा अवर्तित हुई है।" इस कथन की सत्यता सिद्ध कीजिये।

५—"उद्धवशतक" में अत्यंत मार्मिक तथा भावपूर्ण काव्यमय पद्धति द्वारा निर्गुण का खंडन तथा सगुण का समर्थन दृष्टि गोचर होता है।" उदाहरण देते हुये इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिये।

६—"उद्धवशतक" में काव्य कला के आभ्यंतर तथा बाह्य दोनों प्रक्षों का पूर्ण सामांजस्य दिखलाई देता है। उदाहरण देते हुए इस कथन का पूर्ण समाधान कीजिये।

७—उद्धवशतक मुक्तक काव्य है अथवा खंड काव्य। दोनों दशाओं में इस कथन या काव्य संग्रह के नायक या नायिकाओं की निर्णायात्मक की विवेचना कीजिये।

८—एक पथ विशेष पर परिश्रम पूर्वक चलते चलते रत्नाकर जी साहित्य में अपनी एक अलग लीक बना गये है "उद्धवशतक" में से उदाहरण देते हुये इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिये।

प्रकाशक—
सरस्वती पुस्तक सदन,
मोती कटरा, आगरा।

प्रथम संस्करण मूल्य १॥) संवत् २०११

मुद्रक—
आगरा अखबार प्रेस,
आगरा।

जीवन-परिचय

आधुनिक युग के ब्रज-भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि स्वर्गीय बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' का जन्म काशी के अग्रवाल वैश्य घराने में संवत् १९२३ भाद्रपद शुक्ला पंचमी को हुआ था। इनके पूर्वज पानीपत के रहने वाले थे। वे वहाँ मुगलदरबार में प्रतिष्ठित पदों पर काम करते थे। पानीपत छोड़कर इनके पूर्वज लखनऊ पहुँचे थे जहाँ इनके परदादा सेठ तुलाराम जहाँदारशाह के दरबार में रहते थे और लखनऊ के बहुत बड़े रईस समझे जाते थे। कहते हैं कि लखनऊ के एक नबाब ने इनसे ३ करोड़ रुपया उधार माँगा थे, जिसे जुटाने में इनकी सम्पत्ति का एक बड़ा हिस्सा चला गया था इतने पर भी उनका अमीर स्वभाव बराबर बना रहा। बाबू जगन्नाथ दास में भी उसकी मात्रा कम नहीं थी। सेठ तुलाराम जहाँदारशाह के साथ एक बार काशी आये थे और यहीं पर रहने लगे।

'रत्नाकर' जी के पिता सर पुरुषोत्तम दास फारसी भाषा के अच्छे विद्वान थे। हिन्दी काव्य से भी उन्हें पूर्ण अनुराग था भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इनके समकालीन तथा घनिष्ठ मित्र थे। अपने विनोदप्रिय स्वभाव के कारण भारतेन्दु' बाबू इनके यहाँ विभिन्न भेष बनाकर आया करते थे। कहा जाता है कि एक बार वे एक भिक्षु के भेष में बाबू पुरुषोत्तम दास के घर पहुँचे और एक पैसा माँगने लगे। पैसा मिलने ही वाला था कि पहचान लिये गये और इनकी बहुत हँसी हुई। जगन्नाथ दास जी को भारतेन्दु के सत्संग का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे इन्हें हर तरह से प्रोत्साहन देते थे, भारतेन्दु की तरह रत्नाकर जी के पिता के घर में फारसी और हिन्दी के कवियों की भीड़ लगी रहती थी· जिसका शुभ

—ब्रज भाषा को साहित्योचित एक रूपता देने का जो कार्य आचार्य केशव द्वारा उठाया गया था तथा महाकवि बिहारीलाल के द्वारा आगे बढ़ाया जाकर कविवर घनानंद के द्वारा प्रौढ किया गया था वही अब रत्नाकरजी के द्वारा पूर्ण किया गया है।" उक्त कथन के प्रकाश में रत्नाकरजी की भाषा की समालोचना कीजिये।

—काव्य में भ्रमरगीत का संक्षिप्त विकास दिखाइये तथा भ्रमरगीतों से तुलना करके 'उद्धवशतक' का स्थान निर्धारित कीजिये।

—की अपेक्षा 'रत्नाकर' कम रसमय किन्तु अधिक सूक्ति प्रिय हैं। रीतिकालीन कवियों की अपेक्षा वे साधारणतः अधिक भावना-वान अधिक शुद्ध और गहन संगति के अभ्यासी हैं, "उद्धवशतक को विशेषरूप से दृष्टि में रखते हुए इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिये।

—क्या उद्धवशतक के षट् ऋतु वर्णन को ऋतुवर्णन का उचित रूप कहा जाता है। आपके विचार विवेक पूर्ण हों।

—उद्धवशतक में गोपियों के मनोविज्ञान के साथ दार्शनिक तत्वों का कहाँ समन्वय किया गया है, उसका निर्देश कीजिये। और इस क्षेत्र में रत्नाकरजी की मौलिकता पर प्रकाश डालिये।

—'उद्धवशतक' और प्रियप्रवास के उद्धव प्रसंग की तुलना कीजिए।

—रत्नाकरजी के जीवन व्यापी शृंगार में छिपी हुई दुख की भावना ही मानो 'उद्धवशतक' का केन्द्र पाकर साकार होगई है। इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिये।

रत्नाकर जी को जो मिठास, जो माधुर्य ब्रजभाषा में मिलता था वह खड़ी बोली में न मिल सका। उनकी दृष्टि में तत्कालीन कविता तालतुक-हीन और छविरहित होगई थी अतः इन्होंने उसी पुरानी रसभरी ध्वनि का आवाहन किया और इनके हाथ में पड़कर ब्रजभाषा निखरने लगी। रत्नाकर जी ने एक साथ ही शब्द मैत्री वर्णमैत्री, संगीतात्मकता अनुप्रास प्रियता एवं भावसाम्य का योग करके अपनी कविताकारीगरी को द्विगुणित चमका दिया। उनके मन-मुकर में ब्रजभाषा सुन्दरी अपनी पूर्ण छवि के सात धँसने लगी। कविता कामिनी को रिझाने के लिये उन्होंने अपनी जीवन-चर्या भी उसी के अनुकूल बनाली। वे इतने सादे ढंग से रहते थे कि उन्हें देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि इन्होंने बी. ए. पास की है। उन पर आधुनिकता का प्रचुर प्रभाव नहीं पड़ा था।

रत्नाकर जी स्वभाव से ही बड़े विनोदी सरल और शृंगारी भावना युक्त थे। अपने विनोद प्रिय स्वभाव के कारण इनकी मित्र मंडली में इनका बड़ा मान था। आप जिधर जाते थे उधर ही आपके पीछे साहित्यिकों और कवियों के दल के दल लगे चले जाते थे। प्रयाग और लखनऊ में ये प्रायः आते रहते थे। आगरा में ब्रजभाषा कवि समाज की स्थापना इन्हीं की प्रेरणा से हुई। काशी ना. प्र. सभा के भी ये मान्य सदस्य थे। इन्होंने बहुतसा धन देकर 'रत्नाकर पुरस्कार" की व्यवस्था की थी। इनकी उदारता और साहित्य सेवा यहाँ तक बढ़ी हुई थी कि इन्होंने अपना पुस्तक संग्रहालय भी सभा को प्रदान कर दिया था।

अपने अंतिम दिनों में रत्नाकर जी एक बहुत महत्वपूर्ण कार्य करने में जुटे थे लेकिन दुर्भाग्य से उसे पूरा न कर सके। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि सूरसागर का प्रमाणित एवं शुद्ध संस्करण प्रकाशित किया जाय। इस पर इन्होंने बहुत धन भी व्यय किया था और परिश्रम भी अकथनीय किया था। लेकिन दैव दुर्विपाक से वे उसे पूरा न कर सके। हर्ष की बात है ना० प्र. सभा काशी ने

प्रभाव इन पर पड़ना स्वाभाविक ही था । फलस्वरूप रत्नाकर जी फारसी और हिन्दी के श्रेष्ठ कवि हुये रत्नाकर जी की शिक्षा काशी में हुई थी । उन्होंने बी. ए. की परीक्षा फारसी लेकर पास की । उनकी हार्दिक इच्छा थी कि एम. ए. भी फारसी में पास करते । परन्तु कुछ कारणों वश एम. ए. की परीक्षा न दे सके ।

रत्नाकर जी प्रारंभ में फारसी के ही कवि थे । हिन्दी की कविता इन्होंने कुछ काल बाद आरंभ की परन्तु उसका तार बीच बीच में टूट जाता था । इन्होंने रियासत अवागढ़ में नौकरी करली थी । यहाँ वे खजाने के निरीक्षक के रूप में काम करते थे । परन्तु जलवायु अनुकूल न होने के कारण कुछ दिनों बाद ही वे वहाँ से काशी चले आये, इन दिनों इनकी कविता का सिलसिला अच्छे ढंग से चलता रहा उन दिनों ब्रजभाषा का ही बोलबाला था । खड़ी बोली का आन्दोलन प्रबल नहीं हुआ था । इस कारण इन्होंने ब्रजभाषा में ही योग दिया । दैवयोग से रत्नाकर जी को ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवियों का संपर्क भी काशी में ही प्राप्त हो गया । ये बाल्य-काल से ही कवि सम्मेलनों और गोष्ठियों में भाग लेते थे और बाद में इससे प्रभावित होकर वे स्वयं भी कवि सम्मेलनों और गोष्ठियों का आयोजन करने लगे थे । परन्तु वे आजकल जैसी भीड़-भाड़ के पक्ष पाती नहीं थे ।

कुछ दिन पश्चात् सन १९०२ में ये स्वर्गीय अयोध्या नरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त हुए । सन् १९०६ में अयोध्यानरेश का देहान्त हो गया । लेकिन इनका कार्य कुशलता के कारण महारानी साहिबा ने इन्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लिया परन्तु इससे साहित्य की हानि हुई क्योंकि इन्हें अब साहित्य-सेवा का कम अवसर मिलने लगा । इसलिये सन् १९०६ से १९२१ तक ये साहित्य सेवा से वंचित रहे । सन् १९२१-२२ में रत्नाकर जी का ध्यान साहित्य की ओर आकर्षित हुआ । इस समय तक काव्य क्षेत्र में खड़ी बोली की पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी । परन्तु

प्रचुर प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता तथापि प्रत्येक काल की प्रवृत्तियों का आकलन देखकर पाठक दंग रह जाते हैं। इसका श्रेय उनकी संकलन बुद्धि को है, उनकी बुद्धि इतनी तीव्र एवं इतनी विशाल थी कि आवश्यक तत्वों को अनायास ही संकलित कर लेती थी।

एक ओर तो उन्होंने तुलसी पद्धति पर पौराणिक आख्यान चुने–हरिश्चन्द्र, गंगावतरण उद्धव—कथा आदि तथा दूसरी ओर सूर की मुक्तक पद्धति को अपनाये रखने के लोभ का संवरण भी न कर सके। सूरदास की प्रवृत्ति कथा सूत्र को शिथिल करके किसी अभिप्रेत सूत्र पर जमकर धाराप्रवाह वर्णन करने को थी। रत्नाकर में भी हमें यह प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। अतः मुक्तक और प्रवन्ध काव्य का जैसा मणिकांचन संयोग हमें उद्धवशतक में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। यह रत्नाकर जी की प्रमुख विशेषता थी जिसके कारण उन्हें इतनी ख्याति मिल सकी।

दूसरी विशेपता जो उस समय के प्राचीन परंपरा प्रधान कवियों में नहीं है वह है भक्ति और रीति का समन्वय। रत्नाकर जी संस्कारों से भक्त थे और स्वभाव से रसिक एवं विनोद-प्रिय। भक्ति भी वल्लभ सम्प्रदाय की होने के कारण रसिकता में वाधक नहीं थी। अतः उद्धव शतक में भक्ति और रीति का सुन्दर सामंजस्य देखने को मिलता है। कवि ने आत्मविह्वल होकर कृष्ण कथा कही और सजग होकर रीतिकालीन कला का अनुसरण किया। यही दोनों प्रवृतियाँ रत्नाकर को रत्नाकर वना देती हैं।

जहाँ तक कवि की अनुप्रासप्रियता एवं रीति—रुचिता का प्रश्न है कवि ने रीतिकालीन कवि पद्माकर, घनानंद, देव विहारी आदि को अपना आदर्श वनाया। परन्तु प्रधानता पद्माकर की ही रही। जैसा कि रत्नाकर जी ने स्वयं कहा है:—

"शब्दमाधुरी, शक्ति प्रवल, मानत सुरनर।
जैसे हो 'भवभूति'—भयो तैसे पद्माकर॥

उसे पूरा करके रत्नाकर जी की स्वर्गीय आत्मा को असीम सुख पहुँचाया है। रत्नाकर जी द्वारा संपादित 'बिहारी रत्नाकर' नामक प्रमाणिक टीका अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक मानी जाती है। रत्नाकर जी यद्यपि ब्रजभाषा के ही अनन्य पुजारी थे किन्तु कुछ कवित्त खड़ी बोली में लिखकर उसकी भी अर्चना उन्होंने की थी। आधुनिक काल में भी सूर की सी सुरसरी बहानेवाले कवित्तों के आचार्य एवं अनुप्रास के कुशल कारीगर को जून १६३२ में साहित्य क्षेत्र को अकेला छोड़ हरिद्वार में मोक्ष प्राप्त हुआ।

प्रश्न १ :—"रत्नाकर' जी पुराने खेवे के कवियों में सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।" 'उद्धवशतक' की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुये इस कथन की पुष्टि कीजिये।

हल—आधुनिक काल की पुरानी धारा के कवियों में सेवक (वाग्विलास) रीवाँ नरेश (भक्ति और शृंगार) सरदार (टीकाकार + भक्ति + शृंगार) ललित किशोरी, भारतेन्दु प्रेमघन, पूर्णसिंह, जगमोहनसिंह, श्रीधर पाठक, देवी प्रसाद पूर्ण 'रत्नाकर' जी, सत्यनारायण कविरत्न, वियोगी हरि आदि को प्रमुख स्थान प्राप्त है।

उक्त कवियों में सेवक, रीवाँ नरेश प्राचीन परंपरा के अक्षरशः अनुकरण करने वाले थे इन्होंने रीतिकालीन कवियों को अपना आदर्श बनाया था। कुछ कवि भक्त कवि थे। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने खड़ी बोली में भी कविता की लेकिन ब्रजभाषा की प्रधानता रही। श्रीधर पाठक प्रायः खड़ी बोली के क्षेत्र में ही विचरण करते रहे, सत्यनारायण 'कविरत्न', वियोगी हरि, रत्नाकर जी आदि का काव्यक्षेत्र ब्रजभाषा ही में रहा लेकिन जैसी सुरसरी रत्नाकर जी ने बहाई, जो रत्न वे दे सके और कोई नहीं प्रदान कर सका। वियोगी हरि में प्रतिभा अवश्य थी लेकिन रत्नाकर जी जैसी साधना उन्हें नहीं मिली थी। पूर्ण सिंह जी में न तो वह काव्य-साधना थी और न वह प्रतिभा ही। रत्नाकर जी पर जैसा कि हम उनकी 'जीवनी' में दिखा चुके हैं, आधुनिकता का

"सुनि ऊधव की अकह् कहानी कान
छोउ थह्गली, कोउ थानहि थिरानी हैं।"

इसी प्रकार के कुछ और उदाहरण उन्होंने गंगावतरण आदि से प्रस्तुत किये हैं। 'उद्धव-शतक' में कुछ अर्थ सम्बन्धी आक्षेप भी कुछ आलोचको महोदयों ने किये हैं जैसे:—

"पाइ वहे कंज में सुगंध राधिका कौ मंजु
ध्याये कदली वन-मंतग लौं मताये हैं।"

इसमें आपत्तिग्रस्त अंश है "सुगंध राधिका कौ" जिसका भार उन्होंने इसप्रकार समझा है कि राधिका ने फूल को सूंघ कर फेंक दिया है। लेकिन नम्र निवेदन है कि यह उनकी बुद्धि का भ्रम है। रत्नाकर जी का यह तात्पर्य कदापि नहीं था।

कहना नहीं होगा कि 'रत्नाकर जी' में मौलिकता का अभाव नहीं है। आखिर मौलिकता है क्या उस पर आलोचक महोदयों ने ध्यान नहीं दिया। इमरसन ने कहा है "मौलिकता नई २ उद्भावनाओं में नहीं है वरन् वह तो विषय की पैठ और उसकी गहराई में निहित है।" Genius does not lie in originality but in intensity and depth of the Subjectmatter" एक दूसरे विद्वान ने भी कहा है" मौलिकता अनअनुकृति की हुई चोरी है।" "Originality is an Undictated theft." इन विद्वानों ने मौलिकता की जो व्याख्या की है उसको दृष्टिगत करते हुये यह कहने की आवश्यकता नहीं कि रत्नाकर जी में मौलिकता का अभाव नहीं है (उद्धवशतक की मौलिकता पर एक प्रश्न अलग से आगे हल किया गया है।) रत्नाकर में भावसादृश्य अवश्य मिलता है पर कवि ने मूल भावों के सौन्दर्य में वृद्धि ही की है। इसलिये इस दृष्टि से देखने पर उनमें मौलिकता है। यह गुण अन्य कवियों—सेवक सरदार आदि में नहीं है। रत्नाकर ने रीतिकाल को पूर्ण किया; उसमें रीति की धारा बहा दी, संस्कृत मिश्रित ब्रजभाषा की रचना की। भरती के शब्दों को निकाल बाहर किया। भाव-गाम्भीर्य की ओर

शब्दयोजना, अलंकार प्रयोग, लाक्षणिक वैचित्र्य, चमत्कार-प्रदर्शन, भाषा सौष्ठव, अनुप्रास प्रियता आदि के लिये तो कवि ने रीतिकाल को लिया किन्तु इस बाह्य कला के पीछे एक भक्त की आत्मविह्वलता छिपी रही। इसीलिये रत्नाकर में मार्मिकता और प्रभविष्णुता दोनों साथ रही। यह अभाव सरलता के साथ उस समय के अन्य कवियों में हम देख सकते हैं। सेवक मर्मज्ञ कवि थे, परन्तु चमत्कार प्रिय अधिक थे, ललितकिशोरी में तन्मयता अवश्य अधिक है, पर कला-सौष्ठव का अभाव है, रीवां नरेश तो केवल राजसी ठाठ बाट की लिस्ट देने में ही लगे रहे। परिगणन शैली ही उसमें मिलती है। कहने का तात्पर्य है रत्नाकर को छोड़कर तत्कालीन अन्य किसी भी कवि में कलापक्ष एवं भावपक्ष का सुन्दर सामंजस्य नहीं मिलता। जबकि रत्नाकर जी ने एक ओर तो गंगावतरण जैसे प्रौढ़ खंड काव्य दिये जिनमें मार्मिक स्थलों पर रस का अजस्र प्रवाह बहा और साथ ही मुक्तक कविताओं में उन्होंने जो रस के छींटे छोड़े उससे रीतिकाल की सूक्ति-प्रियता में जीवन का संचार हो गया।

प्रायः कुछ विद्वान् आलोचकों को रत्नाकर जी की मौलिकता पर संदेह है। उनका कथन है कि उनमें मौलिकता न्यूनमात्रा में है और पिष्ट पेषण अधिक—उन्होंने पद्माकर, देव, बिहारी, भारतेन्दु सूर आदि की भावरूपी उसी पुरानी मदिरा का पुराने पात्रों में कुछ नवीन ढंग से भर दिया है। और अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने निम्नांकित उदाहरण प्रस्तुत किये हैं:—

"छोही सी, छली सी, छीन लीनी सी, छकीसी छीन—
जकी सी, टकी सी, लगी थकी थहरानी सी।"

—पद्माकर

पद्माकर के उपर्युक्त भाव को नये रूप से रत्नाकर जी ने इस प्रकार रक्खा है:—

(२) ऊधौ ब्रजबासिन के विलास को ध्यान धरयौ
निसिदिन काँटे लों करेजे कसकतु है।

अनुभाव विधान—

(१) उझकि उझकि पद कंजनि के पंजनि पै
पेखि पेखि पाती छाती छोंहनि सबैलगीं।

(२) हौले से, हूले से, हूल हूले से हिये में हाय
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से।

३) आहि कै कराहि नैन नीर अवगाहि कछु—
कहिबे कों चाहि हिचकी लो रहि जाइयौ।

सारांश यह है कि अनुभाव विधान 'उद्धव शतक' का प्रौढ़तम एवं कुशल प्रयोग है। जो किसी समसामयिक कवि में नहीं मिलता। यहाँ तक कि भारतेन्दु में भी नहीं।

विप्रलंभ शृंगार इस अनुभाव विधान से मूर्तिमान बनकर हमारे हृदयों को द्रवित कर सकने में समर्थ हुआ है।

कला की दृष्टि से कोई भी पद रत्नाकर को महान बनाने का निर्देशक है। कवि के साँग रूपकों का सफल निर्वाह उसकी उच्च कलाकारिता का द्योतक है। भाषा की प्रौढ़ता व सौष्ठव उक्ति-वैचित्र्य छन्द-गठन, शब्द-चयन, शब्दमैत्री वर्ण मैत्री और वाग्वैदग्ध्य कवि को रीतिकालीन कवियों 'पद्माकर' देव विहारी के उच्च स्थान पर बैठाता है। रत्नाकर के कवितों एवं पद्माकर के कवितों में इतना साम्य है कि उनके मिलाने पर अन्तर ढूंढ़ना असम्भव हो जाता है (एक बार कवि ने ऐसा किया भी था) कहीं तो पद्माकर की भाषा रत्नाकर की भाषा के आगे हल्की पड़ती है। रत्नाकर की भाषा में देव की मनोहारिता विहारी का वाग्वैदग्ध्य मतिराम की सरसता घनानन्द की लाक्षणिकता और पद्माकर की अनुप्रास-प्रियता व प्रवाह और ओजगुण मिलते हैं।

रत्नाकर के प्रिय अलङ्कार रूपक उपमा, श्लेष, यमक, उत्प्रेक्षा आदि हैं। रत्नाकर की बहुज्ञता भी उल्लेखनीय हैं। कहीं उद्धव की काया

ध्यान दिलाया तथा अनुप्रास प्रियता की रक्षा के निमित्त भाव-हत्या नहीं होने दी। कठिन पच्चीकारी होने पर भी जैसे 'ताज' में प्रेम की भावना निहित है उसी प्रकार रत्नाकर की बारीक व जटिल कारीगरी को उसमें अन्तर्निहित भावधारा और भी अधिक चमक देती है। आभूषणों से युक्त होने पर भी आत्मा पवित्र ही है। अन्यथा रत्नाकर केवल सूक्तिकार ही रह जाते। जैसा कि बाबू श्यामसुन्दर दास ने कहा है उद्धवशतक की सूक्तियाँ रसमय हैं उनमें अजस्र रस स्रोत बहता है। उद्धवशतक की सूक्तियों में पद्माकर से कहीं अधिक गाम्भीर्य है। अनुप्रास की आँधी में 'पद्माकर' के छन्द उड़ते दृष्टिगोचर होते हैं। 'देव' में अनुप्रास के निर्वाह के लिये तोड़ फोड़ मिलती है और इसलिये देव को प्रायः कपि स्वभाव (तोड़-फोड़) धारण करना पड़ा है। परन्तु रत्नाकर जी का शब्द भंडार इतना विशाल था कि आवश्यकता पड़ते ही बिना भाव हत्या किये शब्द हाथ जोड़े चले आते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि 'रत्नाकर' ने एक प्रकार से रीतिकाल के दोषों को त्याग कर गुण अपनाये और प्रबन्ध काव्य का प्रयोग कर उसे पूर्ण बनाया।

'उद्धवशतक' कवि का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाता है। अभिव्यंजना व भाव परिपाक की दृष्टि से यह काव्य अनूठा बन पड़ा है। भागवत से प्रारंभ होने वाली और रत्नाकर-सत्यनारायण-रसाल तक प्रवाहित होने वाली भ्रमरगीत की कथा को रत्नाकर ने अपनी सुचारु कला से अभिव्यंजित किया है। 'उद्धवशतक' में एक ओर तो भाव विह्वल कृष्ण—गोपियों की हृदय स्थिति का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया गया है और दूसरी ओर शब्द शब्द में परंपरा युक्त परन्तु सर्वथा प्रौढ़ कला का चरम उत्कर्ष है। भावविधायकता की दृष्टि से कवि ने उक्तियों और अनुभावों का आश्रय लिया है:—

(१) नाम कौं बताइ औ जताइ ऊधौ गाम बस
श्याम सौं हमारी राम राम कहि दीजियो।

वही कहा जो भक्त कवि कह आये थे। आधुनिकता के प्रति उनके जीवन में कोई स्थान नहीं था। किसी सीमा तक वे पूरे क्लासीकल कवि थे"— "नन्द दुलारे वाजपेयी"

प्रश्न २:—'उद्धवशतक' के काव्य गुणों का विश्लेषण करते हुये हिन्दी के भ्रमरगीत साहित्य में उसका स्थान निर्धारित कीजिये।

हल:—कवि विशेष की कविताओं का अध्ययन करते समय देखना यह होता है कि वह हमें सामान्य भावभूमि पर पहुँचाने में कहाँ तक समर्थ हुआ है। अर्थात् सामान्य भावालंम्बन प्रस्तुत कर हमें कितने भावों में तथा कितनी गम्भीरता तथा तन्मयता से मग्न करने में सफल हुआ है। उसके द्वारा प्रस्तुत की गई काव्य सामग्री से हमारे मानस में कहाँ तक आन्दोलन उठते हैं। कवि-कर्म विधान के आचार्यों द्वारा दो पक्ष वताए गए हैं—१-भावपक्ष २—कलापक्ष। भावपक्ष के अन्तगत रस प्रक्रिया आती है। अर्थात् भावपक्ष का सम्बन्ध काव्य की आत्मा से है और कलापक्ष का सम्बन्ध काव्य के वाह्यपक्ष—भाषा, छन्द, अलङ्कार, चित्रोपमता आदि से है। यहाँ हमें 'उद्धवशतक' के काव्य गुणों की मीमांसा उपर्युक्त आधार पर करनी है। पहले भाव पक्ष को ही लेकर चला जाय क्योंकि आत्मा ही प्रधान होती है।

'उद्धवशतक' यद्यपि एक छोटा सा ही काव्य है, तथापि इसमें काव्य कौशल इतनी प्रचुर मात्रा में है कि इसका लघु आकार इसके पांडित्यपूर्ण काव्यकौशल के कारण और भी स्तुत्य हो जाता है। इतने छोटे से काव्य में इतने कौशल का होना कवि की पांडित्य पूर्ण प्रतिभा का परिचायक है।

'उद्धवशतक' विप्रलम्भ शृंगार (करुण, भक्ति, प्रेम तथा शांत) रस प्रधान काव्य है। इसमें भक्ति और प्रेम की, जिन्हें शृंगार के ही अङ्ग मानते हैं महत्ता और सत्ता स्थापित की गई है। रस प्रक्रिया की पूर्ण सामग्री इस में प्राप्त है। कृष्ण और गोपिकायें आलम्बन के रूप, में और गोकुल जो प्रेमलीलाओं का मुख्य स्थान है और जहाँ

को रसायन का प्रयोग कराया है। कहीं उन्हें चन्द्रकान्त मणि बनाया है; कहीं विषम ज्वर के लिये सुदर्शन की शिक्षा दी जाती है। कहीं प्रेम नौका की रस्सी को जोग कुठारी से काटा जा रहा है। कहीं षट्ऋतुओं का श्लेष द्वारा वसंत में ही निवास है; विरह के कारण कभी सदैव पावसऋतु ही रहती है और कभी सदैव शीत ही। कहीं मन मुकुर में श्रीकृष्ण दूर होने पर भी उतने ही अन्दर धसे जा रहे हैं। इन सबसे रत्नाकर की बहुज्ञता का परिचय मिलता है कि रत्नाकर जी का ज्ञान कितना विस्तृत एवं निरीक्षण कितना सूक्ष्म था।

रीतिकाल की प्रधान विलिपना चमत्कार प्रियता में भी रत्नाकर पीछे नहीं रहे। कहीं कहीं तो यह चमत्कार ऊहा की कोटि तक पहुँच गया है। और ये विहारी की बराबरी करने लगे हैं। रूपकों ने भी भावधारा में किसी सीमा तक बाधा पहुँचाई है। कहीं कहीं कला के वाह्य पक्ष के लिये उद्धवशतक में दुराग्रहता है जिससे सूर जैसी मार्मिकता नहीं आ पाई। पाठकों की बुद्धि कवि की शक्ति की पहुँच की खोज में लग जाती है और आत्मविभोरता खो बैठती है एकाध उदाहरण द्रष्टव्य है :—

१—गोपिन की बधटी प्रेमबूटी के सहारे मारे
चलचित—पीरकी भस्म मुरकाइ कैं।

ऊहा का उदाहरण भी देखिये—
सूखि जाति स्याही लेखनी के नेक डर लागें
अङ्क लागें कागद बरिर बर जात हैं।

भाषा सौंदर्य एवं संगीतात्मकता की दृष्टि से हम रत्नाकर को अङ्गरेज कवि "टेनीसन" की कोटि में रख सकते हैं। संगीतात्मक की दृष्टि से रत्नाकर महान थे मीनाकारी इस कवि की महान है। कवित्तों में इस कला का कवि ने अच्छा प्रयोग किया है।

सारांश यह है कि 'उद्धवशतक' के कारण ही रत्नाकर पुराने खेवे के कवियों में श्रेष्ठ कवि थे।"रत्नाकर में व्यक्तिवाद नहीं था। उन्होंने

ब्रज में पहुँचने पर और वहाँ की दशा देख कर ऊधव की जो दशा हुई है उसका चित्रण भी दृष्टव्य है :—

दीन दषा देखि ब्रज-बालनि की ऊधव कौ,
गरि गौ गुमान ज्ञान गौरव गुठाने से।
कहै रत्नाकर न आए मुख बैन नैन,
नीर भरि लाये भए सकुचि सिहाने से॥
सूखे से स्रमे से सकबके से सके से थके,
भूले से भ्रमे से भमरे से भकुवाने से।
हौंले से हले से हूल-हूले से हिये में हाय,
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से॥

'रत्नाकर' जी ने सात्विकों की स्वाभाविक योजना का बड़ा ध्यान रखा है तथा जिस कार्य को साधारण कवि सारी करामतें दिखाकर के भी नहीं कर पाते उसे अपने सूक्ष्म कौशल से संपन्न कर लिया है।

हृदय के शोक, पीड़ा, हर्ष, व्याकुलता आदि को आँसू कितनी सरलता तथा निष्कपटता से प्रकट कर देते हैं। जो काम वाणी नहीं कर पाती उसे आँसू की छोटी २ बूंदें कर लेती हैं। रत्नाकर जी ने आँसुओं से अपनी भाव-व्यंजना में बहुत सहायता ली है—कृष्ण उद्धव से गोपियों के लिये कुछ कहना चाहते हैं लेकिन प्रेम की अधिकता के कारण सात्विक भाव झलक आते है, कंठ अवरुद्ध हो जाता है, आँखों में आँसू भर आते हैं और सारी बात खुल जाती है। देखिये :—

तौलों अधिकाई ते उमगि कंठ आइ भिचि
नीर ह्वै बहन लागी बात अखियाँन तें।

कृष्ण अपना प्रेम संदेश कहना तो चाहते हैं लेकिन अभी इसी असमंजस में हैं कि क्या कहें और कहाँ से कहना आरंभ करें। इतने में स्नेह की अधिकता में वे अपने को संभाल नहीं पाते और अश्रुधारा बह चलती है।

की वायु तथा भूमि पर कृष्णानुराग चढ़ा हुआ है, तथा उद्धव द्वारा लाई हुई पत्रिका उद्दीपन के रूप में लिए जाते हैं। प्रेम और भक्ति से परिप्लावित कृष्ण गोपियों, और आगे चल भक्ति और प्रेम रस में सिंचित उद्धव में पुलकावली, अश्रु प्रवाह, उच्छ्‌वास, कंठावरोध, प्रस्वेद, वैवर्ण्य' कम्प, शैथिल्य, मोह, प्रमाद आदि अनेक अनुभाव यथोचित रूप से यथास्थान प्रदर्शित किये गये हैं। कहीं कहीं तो अनेक अनुभावों का सुष्ठ संगुफन बड़ी ही चातुरी और रुचिरता से किया गया है।

अनुभावों का सूक्ष्म निरीक्षण एवं गुंफित चित्रण 'उद्धवशतक' की अपनी विशेषता है।

उद्धवशतक को दृष्टि में रखते हुए यह निसंकोच कहा जा सकता है कि अनुभावों की सफल योजना करने में हिन्दी के बहुत ही कम कवि रत्नाकर से आगे बढ़ पाये होंगे। एक दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं :—

(१) सुन २ ऊधव की अकह कहानी मान
कोऊ थहरानी, कोऊ थानिहिं थिरानी हैं।
कहै रत्नाकर रिसानी, बररानी कोऊ
कोऊ बिलखानी बिकलानी बिथकानी है।
कोऊ सेदसानी—कोऊ भरि दृगपानी रहीं
कोऊ घूमि घूमि परी भूमि मुरझानी है।
कोऊ स्याम २ के बहकि बिकलानी कोऊ
कोमल करेजो थामि सहमि सुखानी है।

ऊद्धव की ज्ञान गाथा सुनकर गोपियों की जो दशा हुई उसका ऐसा मार्मिक चित्रण रत्नाकर जी ने उपस्थित किया है।

कुछ गोपियाँ तो सुनकर स्तंभित ही रह गईं। उन्हें स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि कृष्ण ऐसा संदेशा भेजेंगे। कोई अन्टसंट ही बकने लगी।

जिन्होंने भावों की मार्मिक-अनुभूति प्राप्त की है, वे फिर बड़बड़ाते नहीं—

"गिरा अनयन नयन बिनु बानी"

तुलसी की इस मार्मिक उक्ति का सम्भवतः यही भाव है 'रत्नाकर' जी भी इसी बात को कुछ इस ढंग से कहते हैं :—

ऊधौ ब्रह्म ज्ञान कौ बखान करते ना नैकुं
देखि लेते कान्ह जी हमारी अंखियानतैं।

"हमारी अखियान तैं" कहने से क्या गोपियों का यह तात्पर्य है कि उद्धव के नेत्रों में कोई दोष है अथवा गोपियों के नेत्रों में कुछ ज्योति अधिक है। ऊपर से देखने से गोपियों और उद्धव दोनों नेत्रवाले हैं पर हृदय में पावन प्रेम की स्निग्धता के कारण गोपियों के नेत्रों में एक प्रकार की विशेषता आ गई है जो उद्धव को प्राप्त नहीं है इसी कमी के कारण उद्धव बखान करने में ही लगे हैं। इस पर गोपियाँ कहती हैं :—

मोर पंखियाँ को मौर वारौ चारु चाह न कौं
ऊधौ अखियाँ चाहैं न मोर पंखियाँ चहैं।

वे कहती हैं कि आकार प्रकार में तो मोर के पंखों में भी आँखें होती हैं पर हे ज्ञानी उद्धव! उन नेत्रों से वह बेचारा देखने का काम नहीं कर पाता। इसी प्रकार यद्यपि तुम्हारे नेत्र दिखाई पड़ते हैं पर उनमें वह ज्योति नहीं है जिससे मोर मुकुट वाले को देखा जा सके।

गंभीर भावों की व्यंजना करते समय रत्नाकर जी ने भी तुलसीदास इत्यादि की भाँति इस बात का अनुभव किया है कि वियोग व्यथा आदि सुकुमार भावों की गंभीरता अनिर्वचनीय है :—

विरह-व्यथा की कथा अकथ अथाह महा
कहत बनै न जो प्रवीन सुकवीन सों।

'रत्नाकर' जी की यह विशेषता है कि उनकी किसी किसी रचना में सात्विक भावों और अनुभावों का एक साथ ही समावेश हुआ है लेकिन अस्वाभाविकता नहीं आने पाई है। नीचे अनेक गोपियों की दशाओं का वर्णन होने से आलंबन भिन्न २ हैं इसलिये वर्णन में कैसी स्वाभाविकता दिखलाई पड़ती हैं :—

सुनि २ ऊधव की अकह कहानी कान,
कोऊ थहरानी, कोऊ थानहिं थिरानी हैं।
कहै रत्नाकर रिसानी, बररानी कोऊ,
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी हैं॥
कोऊ सेद सानी-कोऊ भरि दृग पानी रहीं,
कोऊ घूमि घूमि परीं भूमि मुरझानी हैं।
कोऊ स्याम स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ,
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी हैं॥

ऐसे एक नहीं अपितु अनेक वर्णन 'उद्धव शतक' में मिलते हैं जो कवि की काव्य-कुशलता के प्रतीक हैं।

'उद्धवशतक' की भावपक्ष की दूसरी विशेषता मूक भाव व्यंजना है। प्रायः देखा जाता है कि जिन कवियों को भावों की गंभीर तथा मार्मिक अनुभूति नहीं होती वे प्रायः किसी भाव के पास पहुँच कर बहुत कुछ कहने का हौसला रखते हैं और इस हौसले से कभी २ दूर की कौढ़ी लाने का प्रयत्न करते हैं और इस प्रयत्न में केन्द्रभाव से भटक जाते हैं। पर जिन कवियों के पास अनुभूति-पोषित मार्मिकता है वे दूर न जाकर अपने पास ही की वस्तु को कुछ सूक्ष्मता तथा सहृदयता से देखते हैं। ऐसे कवि बड़े संयम से बहुत कुछ कहने के प्रलोभन को रोक लेते हैं। श्रेष्ठ कवि थोड़े में ही—गागर में ही सागर भर देते हैं। भाव की अनिर्वचनीयता जैसे उन्हें मूक कर देती है। जिन कवियों के वाणी है उनके नेत्र नहीं; जिनके नेत्र हैं उनके वाणी नहीं; जो बड़बड़ाते हैं वे अनुभूति हीन हैं; और

आखिर गोपियाँ कहना भी क्या चाहती हैं वह जानती हैं कि अगर हमारी दुःखी दशा को उद्धव कृष्ण से कहेंगे तो उन्हें बड़ा दुःख होगा इसलिये वे कहती हैं :—

नंद जसुदा औ गाय गोप गोपिका की कुछ,
वात वृप भान-भौन हूँ की जाहि कीजियो।
कहै रत्नाकर कहैं हाहा खाइ,
ह्यां के परपंचभनि सो रंचन पसीजियो॥

क्योंकि :—

आँस भरि ऐहैं औ उदास मुख ह्वै जाय,
व्रज-दुख-त्रास की न ताते साँस लीजियो।

आखिर वे कहना भी क्या चाहती हैं, देखिये :—

नाम कौ बताइ औ जताइ गाम ऊधौ बस,
श्याम सौं हमारी राम-राम कहि दीजियो॥

इस प्रकार गंभीर परिस्थितियों में रत्नाकर जी ने अपने पात्रों से कुछ न कहला कर मौन ही रहने दिया है।

कवि किसी बात को पाठक या श्रोता को समझाने के लिये उसका बिम्बग्रहण कराना पड़ता है उसको साक्षात चित्ररूप में—गोचर प्रत्यक्षीकरण के रूप में उपस्थिति करना पड़ता है। ऐसा करने से पाठक के मानसटल पर वह बात शीघ्र ही अंकित हो जाती है तथा सद्यप्रभावोत्पादक भी होती है। कहना नहीं होगा कि 'रत्नाकर'जी इस कला के आचार्य थे। 'उद्धवशतक' के एकाध कवित्त को छोड़कर सभी कवित्तों को चित्ररूप में उपस्थित किया जा सकता है। वह चित्रोपमता भी कितनी सजीव है कि शब्दों में भी प्राण फूँक दिये हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :—

उससि उसाँसनि सों वहि २ आँसनि सों,
भूरि भरे हियके हुलास न उरात हैं।
सीरे तपे विविधि संदेसनि की बातनि की,
बातनि की झोंक में लगे ही चले जाते हैं॥

विषय अनिर्वचनीय है कह कर इस बात की ओर संकेत किया जाता है कि वर्ण्य विषय बहुत गंभीर है तथा जो बात जैसी कहनी है वैसी ही शब्दों के द्वारा नहीं कही जा सकती। इन भावों को सुहृदय कवि कुछ संकेतों के द्वारा व्यक्त करते हैं। भावोत्कर्ष की उच्च भूमि तक पाठकों को पहुँचा कर वे मूक होकर खड़े हो जाते हैं और बड़ी भावुकता से कोमलता करुण भावों की ओर केवल उंगली उठाकर संकेत करते हैं क्योंकि वहाँ संकेत से अधिक कुछ किया ही नहीं जा सकता। इस कला को मूक भाव व्यंजना कहते हैं। इसका प्रयोग रत्नाकर जी ने अनेक शैलियों में किया है। कृष्ण उद्धव को व्रज की ओर पहुँचाने जा रहे हैं वे गोपियों के लिये कुछ कहना चाहते हैं। पर उनके पास शब्द नहीं है। वे बड़ी दूर तक रथ के साथ ही लगे जाते हैं। अन्य कवि यहाँ पर अपनी प्रखर कल्पना के द्वारा अनेक प्रेम संदेश गोपियों से कहने के लिये गढ़ देते। पर इन कल्पनाओं से जो बात न हो पाती वह कृष्ण के इस प्रकार के रथ के साथ लगे चले जाने से हो गई। कुछ कहना तो अवश्य चाहते हैं तभी तो रथ के साथ लगे चले जा रहे हैं। पर क्या कहें, कैसे कहें इत्यादि का निर्णय न कर पाने र कुछ भी नहीं कह पाते :—

उर्सास उसाँसनि सौं बहि २ आँसनि सौं,
भूरि भरे हिय के हुलास न उरात हैं।
सीरे तपे विविध संदेसनि की, बातनि की,
घातिन की झोंक में लगेई चले जात हैं॥

इसी प्रकार उधर गोपियाँ भी कुछ संदेश भेजना चाहती हैं। पर वे "जरा हमारी सुनलो" से अधिक कुछ भी नहीं कह पातीं देखिये :—

सबद न पावत सो भाव उस गावत जो,
ताकि ताकि आनन ठगे से ठहि जात हैं।
रंचक हमारी सुनो; रंचक हमारी सुनो,
रंचक हमारी सुनो रहि रहि जात हैं॥

"आहि के कराहि नैन नीर अवगाहि-कुछ,
कहि वे कौ चाहि हिचकी लै रहि जाइयौ।"

अब तक तो हुई भावपक्ष की बात अब कुछ दूसरे पक्ष की ओर भी देखलें। 'जीवनी' में हम दिखा चुके हैं कि रत्नाकर का अध्ययन बहुत विस्तृत था तथा वे जिस वातारण में रहे थे वह साहित्यिक था। भिन्न २ भाषाओं के कवि पुगंवो की उनके यहाँ गोष्ठियाँ होती थी—विशेषतः हिन्दी और फ़ारसी के। इसलिये यद्यपि रत्नाकरजी को फ़ारसी से विशेष प्रेम था लेकिन हिन्दी कविता में जब उतरे तो उन्हें जो मिठास जो कर्णप्रियता ब्रजभाषा में मिली वह किसी अन्य भाषा में नहीं। इसलिये उनकी जितनी भी हिन्दी की रचनायें हैं सब ब्रजभाषा में ही है। रत्नाकर जी ब्रजभाषा के परमप्रेमी और मर्मज्ञ थे। इसके लिये वे बहुत समय तक ब्रज में रहे और ब्रजभाषा साहित्य का आद्योपान्त अध्ययन किया। कहना नहीं होगा कि इस काव्य (उद्धवशतक) की भाषा भी शुद्ध ब्रजभाषा ही है। रत्नाकर जी भाषा के शास्त्री थे। "ब्रजभाषा को साहित्योचित एक रूपता का देने का जो कार्य आचार्य केशव द्वारा उठाया गया था तथा महाकवि बिहारी लाल के द्वारा आगे बढ़ाया जाकर कविवर घनानंद द्वारा प्रौढ़ किया गया था वही अब 'रत्नाकर' जी के द्वारा पूर्ण किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि 'रत्नाकर' जी का ब्रजभाषा पर व्यापक अधिकार था।

प्रायः कहा जाता है कि कविता का भावपक्ष ही प्रधान होता है। परन्तु विचार पूर्वक देखा जाय तो भाव भाषा पर ही आधारित रहते हैं। अगर कवि की भाषा उत्तम नहीं; उसका शब्दकोष विशाल नहीं; तो कवि का भाव उसके हृदय में मुरझा जायगा। और अशक्त भाषा होने के कारण प्रायः देखा जाता है कि कवि कहना कुछ चाहता है और कहे हुये का अर्थ कुछ निकलता है। इसलिये यह आवश्यक है कि भाषा और भावों में पूर्ण सामंजस्य हो। उद्धवशतक की भाषा को दृष्टिगत करते हुये हम देखते हैं कि वह

रथ में उद्धव सवार हैं और रथ चलने लगा है। कृष्ण कुछ कहने की झोंक में रथ के साथ लगे चले जा रहे हैं। कितना स्वाभाविक एवं मार्मिक दृश्य कवि ने उपस्थित किया है सामने चित्र खिंच जाता है तथा भाषा तो और भी सहायक हो जाती है। अंतिम पंक्ति के "बातनि की घातनि" से ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण के साथ-साथ शब्द भी लगे चले जारहे हैं।

इस प्रकार के एक नहीं अपितु अनेक छन्दों से उद्धव शतक भरा पड़ा है जो कवि के काव्य कौशल की महती महत्ता की प्रतिष्ठा करते हैं। कृष्ण के लिये जो संदेश उद्धव से गोपियाँ कहतीं हैं वहाँ जो छन्द कवि ने लिखे हैं वे 'भ्रमरगीत साहित्य' में तो क्या संपूर्ण साहित्य में ही अपनी सानी शायद नहीं रखते। सूर ने गोपियों के द्वारा जो संदेश कृष्ण के लिये भिजवाया है उससे भी कहीं अधिक सजीवता एवं मार्मिकता तथा अभिनयात्मकता उन छन्दों में अगर किसी को मिल जावे तो कोई आश्चर्य नहीं।

शारीरिक अवस्थाओं की पूर्ण सूचना देने वाली व्यंजना के साथ सीधे मर्म पर चोट, करने वाला तथा पत्थर को भी पिघलाने वाला गोपियाँ द्वारा कहा गया संदेश देखिये। गोपियाँ कहती हैं कि तुम कृष्ण से यही कहना और ऐसा नाट्य करके हमारी दशा को निवेदन में सजीव और सरकार करके प्रत्यक्षीकृत कर देना, पहले तो यही कहना :—

हाल कहा बूझत, बिहाल परीं बाल सबैं,
बसि दिन द्वैक देखि दृगनि सिधाइयौ।

और यदि—"औसर मिलै औ सरताज कछू पूछहिं तौ,
कहियौ कछू न दसा देखी सो दिखाइयौ।

(क्योंकि ऐसा करने से सब वृत्तान्त उनकी आँखों के सामने साकार खड़ा हो जायेगा और उसे देखकर सम्भव है वे हमारी दशा का अनुमान करलें और करुणा तथा दया से कुछ पिघल जाँय।)

ओजपूर्ण और भक्ति भावापन्न है। 'उद्धवशतक' की संगीतात्मकता तो पाठक की भावनाओं पर अधिकार जमा लेती है।

शास्त्रीय कसौटी पर भी यदि 'उद्धवशतक' की भाषा को कसा जाय तो उसमें भाषा के वे सभी गुण तथा लक्षण विद्यमान हैं जिनका होना आचार्यों ने आवश्यक ठहराया है। प्रसाद और माधुर्य गुण समस्त काव्य में पाये जाते हैं। लालित्य के साथ वर्ण मैत्री एवं शब्द मैत्री की सुन्दरता द्रष्टव्य हैं। चूँकि 'उद्धवशतक' विप्रलम्भ शृँगार (जो करुण की सीमा तक पहुँच गया है) का काव्य है इसलिये उसके अनुकूल उपनागरिक एवं कोमला-वृत्तियों को ही प्रधानता दी गई है।

अब थोड़ा अलंकार विवेचन कर इस प्रश्न को समाप्त करेंगे। भाव में उत्कर्ष लाने वाली तथा रचना में चमत्कार उत्पन्न करने वाली कुछ विधियाँ अलंकार हैं। लेकिन अलंकार साधन ही हैं साध्य नहीं। कहना नहीं होगा कि उद्धवशतक में एकाध छन्द (१०१) को छोड़ कर अलंकार सर्वथा साधन रूप में ही आये हैं। 'रत्नाकर' जी के प्रिय अलंकारों में अनुप्रास तो इस काव्य की आत्मा ही हैं तथापि इसके अतिरिक्त साँग रूपक, उपमा उत्प्रेक्षा, श्लेष आदि का भी सुन्दर प्रयोग किया गया है। अलंकार निर्वाह के लिये मौलिक उद्भावनाओं ने तो जैसे सोने में सुगन्ध का ही काम किया है। ऊपर ही दिखा चुके हैं कि उद्धवशतक में अलंकारों का प्रयोग साधन रूप में ही हुआ है साध्य रूप में नहीं। इसलिये अलंकार निर्वाह के लिये भाव हत्या का प्रश्न इसमें उठता ही नहीं। 'उद्धवशतक' की रचना लक्षणग्रंथ के रूप में नहीं हुई है। उपर्युक्त सभी अलंकारों के उदाहरण उद्धवशतक में मिलते हैं। अनुप्रास तो किसी भी छन्द में प्रचुरता से पाया जाता है। श्लेष को जैसा निर्वाह ऋतुवर्णन के छन्दों, में हुआ है वह द्रष्टव्य है। साँगरूपक प्रायः 'रत्नाकर' जी की बहुज्ञता प्रदर्शित करने वाले छन्दों में पाया जाता है। इनके अतिरिक्त अन्य अलंकारों विभावना, स्मरण आदि का प्रयोग

भावों और भाषा में पूर्ण सामंजस्य है भाषा भावानुकूल ही है। कहीं २ तो भावों में और भाषा में होड़ सी लग गई है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उद्धवशतक की भाषा अनुप्रास प्रधान, शब्द मैत्री प्रधान एवं वर्ण मैत्री प्रधान है लेकिन फिर भी भावों की हत्या करके कवि ने अनुप्रास प्रियता को निबाहने का प्रयत्न नहीं किया है। शब्द-चयन, पदविन्यास, छन्द सब कुछ भावों के उपयुक्त ही है।

भाषा की एक और विशेषता होती है शब्दों की अनिवार्य सत्ता मँजी हुई अविकृत भाषा वही कही जा सकती है जिसमें यदि छँद में से एक शब्द भी उठाकर कहीं से कहीं किया जाय अथवा उसके स्थान में दूसरा रक्खा जाय तो भाव के समझने में बाधा पड़ने लगे। तात्पर्य यह है कि भारती के शब्द नहीं होने चाहिये। कहना नहीं होगा कि यदि उद्धवशतक के किसी भी छन्द में से शब्दों को स्थानान्तरित किया जाय तो ऐसा भाव हत्या किये बिना नहीं हो सकता।

उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त 'उद्धवशतक' की भाषा में जैसा कि हम ऊपर दिखा आये हैं चित्रोपमता भी बहुत ही सुन्दर रूप में पाई जाती है। 'उद्धवशतक' के पदों को पढ़ने समय सामने एक मूर्तरूप प्रस्तुत हो जाता है। प्रत्येक छन्द का संगीतपूर्ण होना भी उसकी एक विशेषता है।" छंदों की कारीगरी और संगीतात्मकता में 'रत्नाकर' जी की अधिकार पूर्ण कलम स्वीकार की गई है—विशेषतः इनके कवित्त बेजोड़ हुए हैं।........भाषा-सौंदर्य संगीत और छंद-संघटन में—कविता के कलापक्ष की सुघरता में—यदि रत्नाकर की तुलना अंग्रेज कवि टेनीसन से की जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। टेनीसन की कारीगरी भी रत्नाकर की ही भाँति विशेष पुष्ट और संगीत से अनुमोदित हुई है।" कवियों की सर्व श्रेष्ठ विशेषता यही भाषा चमत्कार और छन्दों की रमणीयता स्थापित करने में है। 'रत्नाकर' जी यद्यपि भाषा के विषय में 'पद्माकर' जी से प्रभावित माने जाते हैं तथापि उद्धवशतक में उनकी कविता पद्माकर से अधिक

लेकर छोड़ देते हो वैसे ही एकबार मोह्नी मय अधर सुधा पिलाकर वह भी चटपट हमको छोड़कर चले गये।" इसके पश्चात् दूसरी गोपियाँ भी भ्रमर को उपालंभ देने लगती हैं और उद्धव उन्हें सुनते हैं। अन्त में उद्धव मौन तोड़कर कहते हैं" अहो गोपियों, तुम कृतार्थ होगई हो, तुम संसार में परम पूजनीया हो, क्योंकि तुम्हारा मन भगवान् वासुदेव में यों दृढ़ रूप से लगा हुआ है"। इसके बाद उद्धव कृष्ण का संदेश देते हैं—"प्रियागण। मेरा वियोग तुमको कभी नहीं हो सकता—मैं देहधारियों का आत्मा होने के कारण सदा तुम्हारे पास हूँ। जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश वे पाँचों महातत्व सब तत्वों में अवस्थित हैं वैसे ही मन, प्राण, बुद्धि इन्द्रिय और गुणों का आश्रय-स्वरूप हूँ। मैं पंचतत्व, इन्द्रिय और त्रिगुण-स्वरूपिणी अपनी माया के प्रभाव से अपने ही द्वारा अपने को अपने में उत्पन्न करता, पालता और लीन करता हूँ। इस प्रकार तुम सब वासनाओं से शून्य शुद्धमन को मुझ में लगाकर नित्य मेरा ध्यान करने से शीघ्र ही मुझे पाओगी।

भगवान का संदेश सुनने से गोपियों को शुद्ध ज्ञान प्राप्त हुआ। उनका विरह शाँत होगया और उन्होंने श्रीकृष्ण को इन्द्रियों का साक्षी परमात्मा जानकर उद्धव का भली भाँति पूजन और सादर सत्कार किया। भागवत के भ्रमरगीत और उद्धव गोपियों के प्रसंग से यह स्पष्ट है कि भागवतकार का उद्देश्य इस अध्याय में ज्ञान की महिमा दिखाना है। गोपियाँ भ्रमर के बहाने कृष्ण को उपालंभ देती हैं किन्तु इस चित्र में कहीं भी कुब्जा और मथुरा की नारियों के प्रति ईर्ष्या का भाव नहीं है। भागवत की गोपियाँ उदार हैं वे उद्धव की हँसी नहीं उड़ाती। निर्गुण का खंडन और सगुण का समर्थन नहीं करतीं। कहीं भी कोई व्यंग का प्रसंग नहीं आता जैसा कि हिन्दी के सभी भ्रमरगीत काव्यों में कवियों द्वारा किया गया है। हिन्दी के भ्रमरगीत साहित्य के पात्र तो कृष्ण गोपियाँ और उद्धव आदि भागवत के ही रहे हैं लेकिन उद्देश्य और

किया गया है। (स्थानाभाव के कारण अधिक नहीं दे सकते इसलिये अलंकारों में उदाहरण पुस्तक से देखिये)

उपर्युक्त विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुये हम कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य की भ्रमरगीत परंपरा में 'उद्धवशतक' का अपना अलग एवं उच्च स्थान है। कोई कोई छन्द तो सूर की कोटि को पहुँचा है। सूर के बाद में अगर किसी को प्रधानता दी जा सकती है तो वह अवश्य ही 'रत्नाकर' को। 'उद्धवशतक' रत्नाकर की सर्वश्रेष्ठ कृत्ति है, इसमें कोई संदेह नहीं। (भ्रमरगीत)

प्रश्न ३—उद्धव-गोपी संवाद विषयक हिन्दी की अन्य रचनाओं से तुलना करके उद्धवशतक के विषय प्रतिपादन की विभिन्नता मौलिकता बतलाइये।

हल :—उद्धव-गोपी संवाद-विटप भागवत के क्रोड़ में विकसित हुआ है। भागवत में ही हमें इस संवाद के पहली बार दर्शन होते हैं। दशमस्कन्ध पूर्वार्ध के सेंतालीसवें अध्याय में श्लोक १२ से २१ तक केवल दस श्लोकों में यह प्रसंग कहा गया है। उद्धव कृष्ण का संदेश लेकर, मथुरा से वृन्दावन पहुँचे। " जिनके मन, वाणी और काया कृष्णमय हो रहे हैं वे गोपियाँ कृष्ण के दूत उद्धव के मिलने पर सम्पूर्ण लौकिक व्यवहारों को छोड़ कर कृष्ण के ध्यान में मग्न होगई। प्यारे कृष्ण ने लड़कपन में और किशोरावस्था में जो जो कर्म किये थे उनको याद करके गोपियाँ गाने लगीं। कुछ गोपियाँ लोक लाज को छोड़ रोती हुई उद्धव से कृष्ण की चर्चा करने लगी। प्रिय के समागम की चिन्ता कर रहीं एक गोपी किसी भौरें को अपने निकट "गुन-गुन" करते देखकर उसे कृष्ण का भेजा हुआ दूत मानकर उससे यों कहने लगीं। गोपी ने कहा, ' हे धूर्त के बन्धु मधुकर, तुम हमारे चरणों को न छुओ; तुम्हारे श्मश्रुओं में सौत के कुच मंडल में विहार करने वाली माला में लिप्त कुंकुम लगा हुआ है। मधुपति कृष्ण ही यादवों की सभा में उपहास कराने वाले इस प्रसाद को धारण करें, हम इस प्रसाद को नहीं चाहतीं। तुम्हारी और कृष्ण की बन्धुता ठीक ही है। क्योंकि जैसे तुम सुमनों का रस

का अधिक विकाश पाते हैं। रीतिकालीन कवियों की भाँति अलंकारों का प्राधान्य इन में मिलता है जिसके फलस्वरूप कुछ कवित्त कुछ आलोचकों (केशव, "कृष्ण काव्य में भ्रमरगीत)" की दृष्टि में हास्यास्पद होगये हैं।

'रत्नाकर' जी की सर्व प्रथम मौलिकता तो प्रसंग के प्रारम्भ में ही पाई जाती है। शैली अत्यन्त अभिनयात्मक तथा कथोपकथन प्रधान है जो उसे अत्यन्त ही रोचक बना देती है। प्रारम्भ एक कमल के बहते हुए पुष्प को देखने से ज्ञात होता है जिसके फल स्वरूप कृष्ण विरह विह्वल होजाते हैं। उसमें वासना की प्रधानता विशेष रूप से दिखाई देती है जो सूर, नन्द आदि किसी में नहीं। यह भी 'रत्नाकर' जी की मौलिकता है—"न्हात जमुना में जलजात एक देख्यौ जात" कमल पुष्प की गंध का सादृश्य राधा के शरीर की गंध देख कर कृष्ण को राधा की याद हो उठती है और फिर क्या होता है :—

'ध्याये कदली वन मतंग लौं मताये हैं,'

"मतंग लौं मताये हैं" शब्द से ध्वनित होता है कि पूर्व स्मृति ने कृष्ण को विरहाकुल करने के बदले कामातुर ही बनाया है। यह उक्ति अन्य किसी भी कवि ने नहीं दी है। यह रत्नाकर जी की अपनी मौलिक सूझ है। उद्धव ने आकर कृष्ण को देखा तो अवाक् रह गये। वे कृष्ण की इस सोचनीय अवस्था का कारण पूछते हैं। कृष्ण के उत्तर में भी एक विशेषता मिलती है। हम देखते हैं कि किसी के कृष्ण में इतनी उद्विग्नता नहीं जितनी रत्नाकर जी के कृष्ण में :—

कहा कहैं ऊधौ सौं कहैं हूँ तो कहाँ लौं कहैं
　　　कैसे कहैं कहैं पुनि कौनसी उठान तैं।
तौलौं अधिकाई तै उमगि कंठ आइभिचि
　　　नीर ह्वै बहन लागी बात अखियाँन तैं॥

बहुत से अंगों में भागवत से भिन्न हैं। प्रायः सभी में निर्गुण का खंडन और सगुण का मंडन काव्यमय ढंग से किया गया है। और गोपियों द्वारा उद्धव, की हँसी उड़ाई गई है। गोपियाँ उद्धव के उपदेश से प्रभावित नहीं दिखाई देतीं। कुछ आधुनिक कवियों ने तत्कालीन प्रवृत्तियों के अनुसार—किसी ने सुधारवाद के प्रभाव से किसी ने लोक की दृष्टि से कुछ हेर फेर कर दिया है।

हिन्दी साहित्य में लगभग १५ से अधिक कवियों के भ्रमर-गीत उपलब्ध हैं जिनमें कुछ कवि भक्ति-कालीन हैं—सूर, तुलसी, नंद तथा कुछ रीतिकालीन हैं—रहीम (भावपक्ष प्रधान), मतिराम तथा देव (भावपक्ष एवं कला पक्ष का सामंजस्य) घनानन्द, आनन्दघन, पद्माकर, सेनापति तथा दास कलापक्ष प्रधान) तथा कुछ आधुनिक काल के कवि हैं। जिनमें "भारतेन्दु" (रीतियुक्त राष्ट्रीयता लिये हुये हैं) प्रेमघन तथा सत्यनारायण कविरत्न" (राष्ट्रीयता युक्त) "हरी औध" (गाँधीवाद से प्रभावित) तथा रत्नाकर (रीति भक्ति का समन्वय) एवं डा० रमाशंकर शुक्ल (बुद्धिवादी) प्रमुख हैं। क्योंकि सभी की तुलना एक साथ असंभव और अनावश्यक है इसलिये प्रत्येक के सामने उनके दृष्टि-कोण संक्षेप में दिखाकर के अब रत्नाकर' जी के 'उद्धवशतक' के विषय प्रतिपादन की विभिन्नता या मौलिकता पर प्रकाश डालेंगे।

हम ऊपर दिखा आये हैं कि आधुनिक युग में उत्पन्न होकर भी आधुनिक नहीं थे। बाबू श्यामसुन्दरदास के शब्दों में वे पूर्ण कलासिक कवि थे। इसलिये "उद्धवशतक" की रचना भी उन्होंने नवीन दृष्टिकोण के प्रतिकूल ही की है। इसमें एक बार फिर वही चातुर्य मिलता है जो सूर और नंद अपनी गोपियों में दिखा चुके थे। तर्क की वही प्रणाली है जो नंद की विशेषता है और रीतिकालीन कवियों का विशेष प्रभाव 'रत्नाकर' जी पर दिखलाई देता ही है। भेद केवल इतना ही है कि वे केवल फुटकल कवित्त लिखते थे जिनमें क्रम पर ध्यान नहीं दिया जाता था और यहाँ हम प्रसंग

उनके व्याख्यान का कारण है। उद्धव के विशेष हठ पर कृष्ण कहते हैं :—

आवौ एक वार धारि गोकुल-गली की धूरि
तव इहिं नीति की प्रतीत धरि लैहैं हम।
मनसौं करेजे सौं, स्रवन सिर -आँखिन सौं
ऊधव तिहारी सीख भीख करि लैहैं हम॥

अन्य किसी कवि के कृष्ण ने उद्धव को खुलकर नहीं ललकारा (challenge) था इससे रत्नाकर जी के उद्धव और कृष्ण के चरित्र पर विशेष प्रकाश पड़ता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि दोनों बहुत ही खुली तबियत के थे। सूर के कृष्ण केवल मन में ही उद्धव को प्रेमी-पीर का महत्व समझाने की ठानते हैं स्पष्ट नहीं कहते।

'हरि औध' जी की भाँति 'रत्नाकर' जी ने मार्ग का वर्णन नहीं किया है। 'रत्नाकर' के उद्धव ब्रज में पहुँचते ही ज्ञान भूल जाते हैं और उनकी ज्ञान गठरी तमालों एवं करील की झाड़ों में ही उलझी रह जाती है। उद्धव के पहुँचने पर गोपियों की जो दशा होती है उसका भी 'रत्नाकर' जी ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है :—

(१) धाईं धाम तैं अवाई सुनि ऊधव की
वाम-वाम लाख अभिलाषनि सौं म्वै रहीं।

× × × ×

आंस रोकि सांस रोकि पूछन—हुलास रोकि
मूरति निरास की सी आस भरी ज्वै रहीं॥

(२) भेजे मन भावन के ऊधव के आवन की
सुधि ब्रजगाँवनि में पावन जवै लगीं।
कहै रत्नाकर गुवालिनि की झौरि झौरि
दौरि दौरि नन्द पौरि आवन तवै लगीं॥
उझकि २ पद कंजनि के पंजनि पै
पेखि पेखि पाती छाती छोहनि छ्वै लगीं।

"हरिऔध जी के कृष्ण (प्रिय प्रवास में) कुछ उबे से थे परन्तु कर्त्तव्य को भूलने में असमर्थ थे। रत्नाकर जी के कृष्ण के हृदय में वर्तमान के प्रति विद्रोह था वे प्रस्तुत भार को हटाना चाहते थे। उन्होंने उद्धव से कहा :—

गोपी ग्वाल बालनिकौं झोंकि विरहानल मैं
हरि सुरवृन्द की बलाइ करि हैं कहा।
प्यारौ नाम गोविंद गुपाल कौ विहाय हाय
ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करि हैं कहा॥

इससे प्रतीत होता है कि कृष्ण अपनी भूल पर पछता रहे थे वे गोपियों को छोड़ कर त्रिलोक के स्वामी नहीं बनाना चाहते थे। हरिऔध के कृष्ण के ठीक विपरीत भावना है।

कृष्ण की इन बातों का प्रभाव तीनों लोकों पर पड़ता है। इससे कवि का यह प्रयास ज्ञात होता है कि वह कृष्ण के विराट स्वरूप की ओर संकेत कर रहा है। जिस प्रकार भरत के द्वारा राम को मनाते देख कर इन्द्र शंकित हुआ था उसी प्रकार कृष्ण की इन बातें से सुरपुर में "दुरदिन" छा जाता है, कृष्ण की इन बातों का उद्धव पर क्या प्रभाव पड़ता है-वे क्या अर्थ लगाते हैं यह भी 'रत्नाकर' जी की अपनी सूझ है। कृष्ण की बातों को सुनकर उद्धव चौंके, इसलिये नहीं कि कृष्ण मोहलिप्त हैं, परन्तु राजनैतिक के कारण जान पड़ता है। उन्होंने कृष्ण को चेताया :—

घात में लगे हैं ये बिसासी ब्रजवासी सबै
इनके अनोखे छल छन्दनि छनों नहीं।

जब उद्धव देखते हैं कि गोली मर्म पर नहीं बैठी तो फिर "एको हम द्वितीयो नास्ति" के सिद्धान्त को कृष्ण के सम्मुख रखते हुए कहते हैं—आपही आपुकौ मिलाप और बिछोह कहा, मोह यह मिथ्या सुख दुःख सब ठायौ है।" लेकिन कृष्ण पर इन बातों का कोई असर नहीं होता जो स्वाभाविक था। कृष्ण समझते थे कि ज्ञानी उद्धव ने अबतक प्रेम-पीर का अनुभव नहीं किया है और यही

हमारा प्रेम इतना दृढ़ है तो जब अनेक मनमोहन (काँच के टूटने पर उसके अनेक टुकड़ों में अनेक चित्र दिखाई देते हैं।) हो जावेंगे तो प्रेम और भी दृढ़तर हो जायेगा और तुम्हारी वात फिर कौन सुनेगा। इसमें संदेह नहीं कि रत्नाकर जी की यह वैज्ञानिक उक्ति अन्यत्र नहीं मिलती।

कितना अकाट्य तर्क है। जब एक मनमोहन के होते हुये तो

'रत्नाकर' जी गोपियों का कृष्ण के लिये संदेश कहलाने का अभिनयात्मक ढंग भी मौलिक है। किसी वात को सीधे कहने की अपेक्षा उसके अभिनय का अधिक प्रभाव पड़ता है। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि तुम "यहाँ के प्रपंचन सौं रचन पसीजियो" क्या करना ? केवल :—

आहकैं कराहि नैन नीर अवगाहि
कहिब कौ चाहि हिचकी लैरहि जाइयौं।

'रत्नाकर' जी की गोपियों की मानसिक दशा का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि वे प्रारंभ में भोली भाली, वीच में गंभीर और अंत में अपने वास्तविक रूप ही में सामने आती हैं। वे कृष्ण से प्रार्थना करती हैं :—

"जो कहै सो हैं परिचारिका तुम्हारी हैं।"

ज्ञानी उद्धव की दशा इस दुखांत नाटक को देखकर विचित्र होगई। लोगों ने देखा :—

सूखे से, स्रमे से, सक वके सके से थके
भूले से, भ्रमे से भमरे से भकुवाने से।
हाँले से हले से हूल हूले से हिये में हाय
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से॥

अनुभवों का इतना सुन्दर एकीकरण अन्यत्र नहीं मिलता।

रत्नाकर जी की सबसे बड़ी मौलिकता नंद, यशोदा और राधा को अलग रखने में है। न उनमें धैर्य था कि वे उद्धव की वात सुनते और न उद्धव में इतना साहस ही था कि वे कुछ कह सकते। उनकी

हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं ॥

उद्धव गोपियों के संदेश को भी विशेष प्रकार से देते हैं—

माया के प्रपंच सौं भासत प्रभेद सबै
काँच फलकनि ज्यों अनेक एकसोई है।
देखौ भ्रमपटल उघारि ज्ञान आँखिन सौं
कान्ह सबही में कान्ह ही मैं सब कोई है ॥

और फिर नंद दास की तरह दोनों ओर से वादविवाद होने लगता है। गोपियाँ पहले जो कुछ कहती हैं उससे उनका प्रेम झलकता है। पर ज्यों ज्यों बातें बढ़ती जाती हैं गंभीरता भी बढ़ती जाती है। वे कहती हैं:—

मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एक कह्यौ जो तुम,
तौहूँ हमैं भावति न भावना अन्यारी की।
जैहै बनि-बिगरि न बारिधिता बारिधि की,
बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की।

क्योंकि:—

गोपियों ने यह उक्ति अपने पथ विशेष (सामीप्य) की दृष्टि से कही है फिर गोपियों को विनोद की सूझती है और फिर उस विनोद मे जो कुछ कहती हैं वह रत्नाकर जी की नितांत मौलिकता है। गोपियाँ कहती हैं कि यदि तुम कृष्ण को हमारे हृदय से निकालना ही चाहते हो तो हमारे हृदय को तोड़ना ठीक न होगा। समस्या सुलझने के और उलझती जायगी और ठीक वही हाल होगा कि "मर्ज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की"। क्या तुम्हें ज्ञात नहीं—

टूँक टूँक ह्वैहै मन मुकुर हमारौ हाय
चूकि हू कठोर बैन 'पाहन चलावो ना।
एक मनमोहन तो बसकि उजारयो मोहि
[illegible] में अनेक मनमोहन बसावौ ना।

'रत्नाकर' को रत्नाकर बना देती हैं। इनकी अधिकाँश भावना भक्तों से ली हुई हैं पर भक्तों में उनकी तरह कविता-रीति नहीं थी। वे तो भजनानंदी ही अधिक थे। उनके उपरांत जो कवि हुए उनमें अनुभूति की कमी और भाषाशृंगार अधिक हो गया। इस कवि परंपरा में पद्माकर अन्यतम समझे जाते हैं और रत्नाकर जी इस विषय में अपने को पद्माकर से प्रभावित मानते थे। जैसा कि रत्नाकर जी ने स्वयं कहा है :—

"शब्द माधुरी शक्ति प्रबल मानत सो नर।
जैसे हो 'भवभूति'—भयो तैसे 'पद्माकर'॥"

तथापि 'उद्धवशतक' में उनकी कविता पद्माकर से अधिक ओज-पूर्ण और भक्ति-भावापन्न है और रीति कवियों की अपेक्षा वे साधारणतः अधिक भावनावान्, अधिक शुद्ध और गहन संगीत के अभ्यासी हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि 'उद्धवशतक' का बाहरी ढाँचा रीतिकालीन है और उसका आभ्यंतर भक्तिकालीन। ''रत्नाकर" जी में व्यक्तिवाद नहीं था। वे पूर्ण क्लासिक कवि थे। उन्होंने वही कहा जो भक्त कह आये थे। जहाँ तक शब्द योजना अलंकार प्रयोग, लाक्षणिक वैचित्र्य, चमत्कार प्रदर्शन, भाषा सौष्ठव अनुप्रास प्रियता आदि के लिये तो कवि ने रीतिकाल को लिया किन्तु इस बाह्य कला के पीछे एक भक्त की आत्मविह्वलता छिपी रही। इसलिये 'रत्नाकर' में मार्मिकता और प्रभुविष्णुता दोनों साथ रहीं। एक चीज जो रीतिकालीन कवियों की मुख्य प्रवृति थी वह 'उद्धवशतक' में नहीं पाई जाती। वह है रीतिकालीन कवियों की फुटकल पद लिखने की प्रवृति जिसका 'उद्धवशतक' में सर्वथा अभाव है।

अब हम 'उद्धवशतक' के कलेवर पर कुछ उद्धरण देते हुये विचार करेंगे। जहाँ तक अलंकार प्रयोग का प्रश्न है 'अनुप्रास' तो 'उद्धवशतक' की जान ही है। इतना सुन्दर अनुप्रास का प्रयोग या तो

तुच्छ पर अमूल्य भेंट और मूक निवेदन हमारे हृदय को विचलित कर देते हैं और बुद्धि सोचने का प्रयत्न करने लगती है कि वे संदेश भिजवाते भी तो आखिर क्या ? रत्नाकर ने ब्रजभाषा को नवीन शक्ति और नवीन प्राण देने का प्रयास किया है। भ्रमरगीत के इतने घिसे पिटे प्रसंग को भी रत्नाकर ने खंड काव्य के रूप में मौलिक ढंग से सजाया है। परन्तु उनकी मूल प्रकृति रीति कालीन अलंकार शैली है। रत्नाकर की गोपियाँ तार्किक भावावेश में ही हैं उनके समस्त तर्क और वाकचातुर्य के पीछे उनका हृदय छिपा है। सारांश यह है कि सब कुछ होते हुये भी 'उद्धवशतक' मौलिकता लिये हुये है केवल पिष्टपेषण नहीं।

रत्नाकर में भावसादृश्य अवश्य मिलता है पर कवि ने मूल भावों के सौंदर्य में वृद्धि ही की है। इसलिये इस दृष्टि कोण को अपनाते हुये 'उद्धवशतक' एक मौलिकता युक्त ग्रन्थ है। वैसे भी मौलिकता को अनुकृति की हुई चोरी कहा गया है Originality is an undictated theft" अंग्रेज विद्वान इमरसन ने ठीक ही कहा है "मौलिकता नई नई उद्‌भावनाओं में नहीं है वरन् वह तो विषय की पैठ और उसकी गहराई में निहित है"—"Genius does not lie in originality but in intensity and depth of the subject matter."

प्रश्न ४—" 'उद्धवशतक' में रीतिकालीन कलेवर में भक्तिकाल को आत्मा अवतरित हुई है।" इस कथन की सत्यता सिद्ध कीजिए।

हल—पहले हम दिखा चुके हैं कि 'उद्धवशतक' की एक मुख्य विशेषता उसमें भक्ति और रीति का सुन्दर समन्वय है। 'रत्नाकर' जी संस्कारों से भक्त थे और स्वभाव से विनोदी एवं रसिक। भक्ति भी उनकी वल्लभ सम्प्रदाय की होने के कारण रसिकता में बाधक नहीं थी। अतः दोनों का सुन्दर सामंजस्य उद्धवशतक में मिलता है। कवि ने आत्म. विह्वल होकर कृष्ण कथा कही और सजग होकर रीति काल की कला का अनुसरण किया। यही दोनों प्रवृत्तियाँ

"सेनापति" के "कवित–रत्नाकर" की याद अनायास ही आ जाती है। परन्तु वहाँ तो श्लेष की रत्नार्थ शब्दों की काफी तोड़-मरोड़ की गई है जो उद्धवशतक के छन्दों में नहीं। एकाध उदाहरण द्रष्टव्य है :—

(१) विकसित विपिन वसंतिकावली को रंग,
लखियत गोपिन अंग पियराने मैं।
चौंरे वृन्द लसत रसाल-वर वारिनी के,
पिक की पुकार है चवाव उमगाने मैं॥
होत पतझार झार तरुनि समूहीन कौ,
वैहरि बतास लै उसस अधिकाने मैं।
वाम विधि वाम की कला मैं मीन मेख कहा,
ऊधौ नित वसत वसंत. बरसाने मैं॥

(२) रहति सदाई हरियाई हिय घायलि मैं,
ऊरध उसास सो झकोर पुरवा की है।
पीव-पीव गोपी पीर-पूरति पुकारति हैं,
सोई रत्नाकर पुकार पपीहा की है॥
× × × ×
विनु घनश्याम धाम धाम व्रज मंडल मैं,
ऊधों नित वसति वहार बरसा की है।

अन्य अलंकारों के उदाहरण भी 'उद्धवशतक' में पाये जाते हैं। अलंकारों के विषय में एक बात और रह गई। अलंकारों के निर्वाह के लिये कवि की मौलिक उद्‌भावनायें भी द्रष्टव्य हैं। उनसे कवि की बहुज्ञता का परिचय मिलता है। लाक्षणिक वैचित्र्य और चमत्कार प्रदर्शन में भी 'रत्नाकर' रीतिकालीन कवियों से पीछे नहीं रहे हैं। चमत्कार प्रदर्शन तो स्थान स्थान पर गोपियों द्वारा उद्धव को दिये गये उत्तर में आसानी से पाया जा सकता है। उद्धव गोपियों से कहते हैं कि "तुम यदि कृष्ण को चाहती हो तो पहले उनको भूल जाओ अपने मन से निकाल दो"। इस पर गोपियों ने

पद्माकर में मिलता है या रत्नाकर में। वास्तव में अनुप्रास कवि साधना का आवश्यक अंग एवं काव्य का प्राण है।

इसलिये मम्मटाचार्य ने अपने "काव्य प्रकाश" में सर्व प्रथम अनुप्रास और उपमा को ही स्थान प्रदान किया है और इसी कारण से उन्होंने अलंकारों को शरीर की शोभा बढ़ाते हुए रस में उत्कर्ष लाने वाला कहा है। कहना नहीं होगा कि अनुप्रासों की छटा, वर्ण मैत्री एवं शब्द मैत्री को साथ लिये, भावपूर्ण, धारा प्रवाह पूर्ण सुन्दर भाषा सौष्ठव से सुसज्जित 'संगीत युक्त उद्धवशतक' में सर्वत्र पाई जाती है। एकाध उदाहरण दृष्टव्य है :—

(१) भेज मन भावन के ऊधव के आवन की,
सुधि ब्रज गाँवन में पावन जबै लगीं।
कहै रत्नाकर गुवालिनि की झौरि झौरि,
दौरि दौरि नंद पौरि आवन तबै लगीं॥
उझकि-उझकि पद कंजनि के पंजनि पै,
पेखि पेखि पाती छाती छोहिन सबै लगीं।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा,
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं॥

कितने संतुलित (Well balanced) अनुप्रास का प्रयोग किया गया है कितनी संगीतात्मकता लिये है। "गाँवन", "भावन", पावन में कैसी लय एवं प्रवाह है देखते ही बनता है और साथ ही अनुभूति की मार्मिकता भी।

अनुप्रास के अतिरिक्त 'उद्धवशतक' के प्रमुख अलंकार रूपक, उपमा, श्लेष, उत्प्रेक्षा है और कहीं कहीं विभावना, असगंत, स्मरण आदि का भी सुन्दर प्रयोग किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि अलंकारों का कवि ने खुल कर प्रयोग किया है लेकिन उत्कर्ष में सहायक ही हुये हैं। श्लेष का जितना सुन्दर प्रयोग षट् ऋतुवर्णन के छः छन्दों में हुआ है वैसा अन्यत्र नहीं। एक ही शब्द गोपियों और ऋतुओं के पक्ष में ठीक अर्थ देता है। इन छंदों को देख कर क

सूखि जाति स्याही लेखनी कै .
नेकु डंक लागैं, अंक लागै,
कागज बरारि बरि जात है ।

अब इसे बिहारी की "ओधाई सीसी सुलगि" से मिलाइये। बराबरी में कोई कमी नहीं मिलेगी।

अब कुछ वाक्य विन्यास एवं शब्द चयन पर भी दृष्टि डालिये तो आपको प्रतीत होगा जैसे बिहारी के दोहे ही सामने उपस्थिति कर दिये हों। रत्नाकर' जी पूर्ण कला विद्, भाषा के भंडारी और शब्दों के आचार्य थे। भावों की प्रेषणीयता के लिये केवल भावानुकूल भाषा ही की आवश्यकता नहीं होती अपितु उनके अनुकूल शब्द चयन और काव्य विन्यास की भी आवश्यकता होती है। अगर कोई कवि माधुर्य के लिये 'ट' वर्गी शब्दों का चयन करने लगे तो वह ठीक उसी प्रकार होगा जैसे कोई चतुर पाकशास्त्री खीर में चीनी के स्थान पर नमक डाल दे। कहने का तात्पर्य यह है कि शब्द चयन और वाक्य विन्यास भी भावानुकूल ही होना चाहिये। कहना न होगा कि 'रत्नाकर' जी इस कला में सिद्ध हस्त थे। वाक्य विन्यास एवं शब्द चयन भी उन्होंने ठीक रीतिकालीन ढंग से किया है। एक उदाहरण है—

मोहतम—रासि नासिबे को स हुलास चले
ब्रह्म कौ प्रकास पार मति रतिमाती पर।
कहै रतनाकर कै सुधि उधरानी सबै
धूरि परी धीर जोग-जुगति संघाती पर"
चलन विषम ताती बात ब्रजबारिनि की
विपति महान परी ज्ञानवरी चाही पर।
लच्छ दुरे सकल, बिलोकत अलच्छ रहे।
एक हाथ पाती एक हाथ दिये छाती पर॥

उपर्युक्त छन्द में शब्द चयन इस ढंग का किया है कि प्रत्येक शब्द की अपनी अनिवार्य सत्ता है। किसी भी शब्द को स्थानान्तरित

उद्धव को जो तर्क प्रस्तुत किया है वह किसी रीतिकालीन कवि द्वारा प्रदर्शित चमत्कार की याद दिलाने को बहुत है देखिये :—

टूँक-टूँक ह्वै है मन-मुकुर हमारौ हायं,
चूँकि हूँ कठोर बैन पाहन चलावौ ना ।
एक मनमोहन तो बसिकै उजारयो मोहिं,
हिय में अनेक मनमोहन वसावौ ना ।।

गोपी के अकाट्य तर्क कितना चमत्कार पूर्ण है देखते ही बनता है। काँच को तोड़ने से उसके अनेक टुकड़े हो जाते हैं और पहले जो उसमें एक ही प्रतिविम्ब दिखाई देता था अब उसके ऐसे ही (अलग अलग टुकड़ों में) कितने ही प्रतिविम्ब दिखाई देने लगते हैं। वक्रोक्ति का चमत्कार देखना हो तो नीचे के छन्द में देखिये।

रूप रस पीवत अघात न हुते जो तब
सोई आँस ह्वै उत्तरि गिरिवौ करैं।
कहैं रत्नाकर जुड़ात हुते देखैं जिन्हैं
याद किये तिनकौं अवाँ सौं घिरवौ करैं।
दिनन के फेर सौं भयो है हेर फेर ऐसो
जाकौ हेरि फेरि हेरिबोई हिरवौ करैं।
फिरते हुते जूजिन्ह कुंजनि मैं आठौ जाम
नैननि में अवसोई कुंज फिरवौ करैं।

एक ही छन्द में ध्वनि, रस, चमत्कार और वक्रोक्ति का कितना सुन्दर सामंजस्य हुआ है। सर्वत्र ही अनूठापन लिये हुये है। यदि वक्रोक्ति ही काव्य की आत्मा है तो इस छन्द की श्रेष्ठता अवश्य ही अवलोकनीय है।

चमत्कार प्रदर्शन के लिये कहीं कहीं तो कवि ऊहा का प्रयोग करते हुये विहारी की कोटि में जा पहुँचता है। देखिये विरहाग्नि की अतिशयता इस कोटि को पहुँच चुकी है कि लेखनी भी हाथ में आकर इतनी तप्त हो जाती है कि दवात की स्याही भी सूख जाती है और कागज भी जलने लगता है:—

कहना नहीं होगा कि रत्नाकर जी संस्कार से भक्त थे और भक्ति भी उनकी वल्लभ सम्प्रादय की थी। इसलिये जिस प्रकार सूर ने अपने को गोपियों के रूप में रखकर (सखा रूप) में भगवान के प्रति अनन्य प्रेम प्रदर्शित किया वही गोपियों के प्रेम की अनन्यता, दीनता, मानमर्पता और सख्य भाव की वाग्वैदग्ध्यता 'उद्धवशतक' में पाई जाती है।

उद्धव ने जाकर गोपियों को "एकोअहम् वहुस्यामि" "एको अहम द्वितीयो' नास्ति "आदि के उपदेश दिये और कहा" तुम ज्ञान मार्ग के द्वारा उस परम ब्रह्म में अपनी सत्ता को लीन कर दो। तुम मैं और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं।" परन्तु एक भक्त के लिये यह कितनी कष्टदायक बात थी। भक्त तो हमेशा भगवान की कृपा का इच्छुक रहता है लेकिन अपना अस्तित्व खोकर नहीं। इसलिये गोपियों ने उद्धव से कहा:—

मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एक ही, कह्यौ जो तुम,
तौ हूँ हमें भावति न भावना अन्यारी की,
जैहै बनि विगरि नवारिधिता वारिधि की,
बूँदता विलैहै बूँद विवस विचारी की"

भक्त हृदय के कितने दीनता पूर्ण उद्‌गार हैं। तुम जो कहते हो कि कृष्ण और ब्रह्म एक ही हैं उसे तो हम मानती हैं लेकिन क्या करें हमें अन्यारी की भावना भाती ही नहीं मन माने की बात है। सोचो तो सही समुद्र में अगर एक बूँद को डाल दिया जाय तो उसमें कुछ घट बढ़ नहीं होगी लेकिन बेचारी बूँद का तनिक भी अस्तित्व नहीं रहेगा। मिलाइए ठीक कुछ इसी प्रकार सूर की गोपियों ने कहा है:—

ऊधौ मनमाने की बात
दाख छुहारा छौड़ि अमृत फल विषकीरा विषखात।

गोपियाँ फिर जोग को भक्ति के आगे तुच्छ दिखाते हुये कहती हैं कि तुम जो नेम व्रत आदि के लिये कहते हो इससे तो हम और

करने अथवा बदलने पर सारे छंद का सौन्दर्य नष्ट हो सकता है।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है वह भावानुकूल, ओज, माधुर्य एवं प्रसाद गुण युक्त है। भाषा वही शुद्ध ब्रज भाषा जो रीतिकालीन कवियों ने अपनाई थी कुछ प्रांतीय शब्दों के साथ अपनी मधुरता प्रवाहित कर रही है। उसमें देव की मनोहारिता, विहारी का वाग्वैदग्ध्य, मतिराम की सरसता, घनानंद की लाक्षणिकता और पद्माकर की अनुप्रासप्रियता व प्रवाह मिलते हैं।

यहाँ तक तो हुई 'उद्धवशतक' के कलेवर की बात अब उसकी आत्मा का दिग्दर्शन भी आवश्यक है। आचार्यों ने केवल वाहरी आकर्षण से युक्त, चमत्कार सहित छन्द बद्ध रचना को कविता न कह कर सूक्ति ही कहा है क्योंकि सूक्ति और कविता दो भिन्न कोटि की चीजें हैं। अब यहाँ पर हमें देखना है कि 'उद्धवशतक' जिसका कलेवर इतना सौन्दर्य पूर्ण, चमत्कार युक्त है उसकी आत्मा भी कहीं है उसमें भावनाओं का समावेश भी है अथवा नहीं या उसमें रस की मधुर धारा उसे सिंचित भी कर रही है अथवा नहीं; जिसके अभाव में वह केवल सूक्ति मात्र ही रह जायगा। और यदि उसकी आत्मा है भी तो वह भक्तकालीन है अथवा रीतिकालीन।

हम ऊपर अन्यत्र कह आये हैं कि यह रत्नाकर जी एक विशेषता है आधुनिक युग में रहते हुये उन्होंने विचरण भक्तिकाल में किया। उनमें आधुनिकता व्यक्ति वाद नहीं था, उन्होंने वही कहा जो भक्त कह आये थे। आधुनिकता के प्रति उनके जीवन में कोई रुचि नहीं थी। जो भावना भक्तिकालीन कवियों की थी वही रत्नाकर की भी रही भक्ति कालीन कवि पहले भक्ति थे और बाद में कवि, इसलिये उनमें भावना की अधिकता स्वाभाविक है वे किसी न किसी रूप में (जैसे तुलसी ने दास्य रूप में सूर ने सख्य रूप में) भगवान की आराधना करते रहते थे। भगवान के प्रति उनका प्रेम अनन्य था। भक्तों की जो सात भूमिकायें —दीनता, मानमर्षता, भयदर्शन, अश्वासन भर्त्सना, मनोराज्य, विचारण शास्त्रों में प्रतिपादित हैं वे सभी उनमें पाई जाती थीं।

कहना नहीं होगा कि रत्नाकर जो संस्कार से भक्त थे और भक्ति भी उनकी वल्लभ सम्प्रादय की थी। इसलिये जिस प्रकार सूर ने अपने को गोपियों के रूप में रखकर (सखा रूप) में भगवान के प्रति अनन्य प्रेम प्रदर्शित किया वही गोपियों के प्रेम की अनन्यता, दीनता, मानसंपैता और सख्य भाव की वाग्वैदग्ध्यता 'उद्धवशतक' में पाई जाती है।

उद्धव ने जाकर गोपियों को "एकोऽहम् वहस्मामि" "एको ऽहम द्वितीयो' नास्ति "आदि के उपदेश दिये और कहा" तुम ज्ञान मार्ग के द्वारा उस परम ब्रह्म में अपनी सत्ता को लीन कर दो। तुम मैं और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं।" परन्तु एक भक्त के लिये यह कितनी कष्टदायक बात थी। भक्त तो हमेशा भगवान की कृपा का इच्छुक रहता है लेकिन अपना अस्तित्व खोकर नहीं। इसलिये गोपियां ने उद्धव से कहा:—

मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एक ही, कह्यौ जो तुम,
तौ हूँ हमें भावति न भावना अन्यारी की,
जैहै वनि विगरि नवारिधिता वारिधि की,
बूँदता विलैहै बूँद विवस विचारी की"

भक्त हृदय के कितने दीनता पूर्ण उद्गार हैं। तुम जो कहते हो कि कृष्ण और ब्रह्म एक ही हैं उसे तो हम मानती हैं लेकिन क्या करें हमें अन्यारी की भावना भाती ही नहीं मन माने की बात है। सोचो तो सही समुद्र में अगर एक बूँद को डाल दिया जाय तो उसमें कुछ घट बढ़ नहीं होगी लेकिन बेचारी बूँद का तनिक भी अस्तित्व नहीं रहेगा। मिलाइए ठीक कुछ इसी प्रकार सूर की गोपियों ने कहा है:—

ऊधौ मनमाने की बात
दाख छुहारा छौड़ि अमृत फल विपकीरा विपखात।

गोपियाँ फिर जोग को भक्ति के आगे तुच्छ दिखाते हुये कहती हैं कि तुम जो नेम व्रत आदि के लिये कहते हो इससे तो हम और

करने अथवा बदलने पर सारे छंद का सौन्दर्य नष्ट हो सकता है।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है वह भावानुकूल, ओज, माधुर्य एवं प्रसाद गुण युक्त है। भाषा वही शुद्ध ब्रज भाषा जो रीतिकालीन कवियों ने अपनाई थी कुछ प्रांतीय शब्दों के साथ अपनी मधुरता प्रवाहित कर रही है। उसमें देव की मनोहारिता, विहारी का वाग्वैदग्ध्य, मतिराम की सरसता, घनानंद की लाक्षणिकता और पद्माकर की अनुप्रासप्रियता व प्रवाह मिलते हैं।

यहाँ तक तो हुई 'उद्धवशतक' के कलेवर की बात अब उसकी आत्मा का दिग्दर्शन भी आवश्यक है। आचार्यों ने केवल बाह्य ...कर्षण से युक्त, चमत्कार सहित छन्द बद्ध रचना को कविता न ...कर सूक्ति ही कहा है क्योंकि सूक्ति और कविता दो भिन्न कोटि ... चीजें हैं। अब यहाँ पर हमें देखना है कि 'उद्धवशतक' जिसका कलेवर इतना सौन्दर्य पूर्ण, चमत्कार युक्त है उसकी आत्मा भी कहीं है उसमें भावनाओं का समावेश भी है अथवा नहीं या उसमें रस की मधुर धारा उसे सिंचत भी कर रही है अथवा नहीं; जिसके अभाव में वह केवल सूक्ति मात्र ही रह जायगा। और यदि उसकी आत्मा है भी तो वह भक्तिकालीन है अथवा रीतिकालीन।

हम ऊपर अन्यत्र कह आये हैं कि यह रत्नाकर जी एक विशेषता है आधुनिक युग में रहते हुये उन्होंने विचरण भक्तिकाल में किया। उनमें व्यक्ति वाद नहीं था, उन्होंने वही कहा जो भक्त कह आये थे। आधुनिकता के प्रति उनके जीवन में कोई रुचि नहीं थी। जो भावना भक्तिकालीन कवियों की थी वही रत्नाकर की भी रही भक्ति कालीन कवि पहले भक्त थे और बाद में कवि, इसिलिये उनमें भावना की अधिकता स्वाभाविक है वे किसी न किसी रूप में (जैसे तुलसी ने दास्य रूप में सूर ने सख्य रूप में) भगवान की आराधना करते रहते थे। भगवान के प्रति उनका प्रेम अनन्य था। भक्तों की जो सात भूमिकायें —दीनता, मानमर्षता, भयदर्शन, अश्वासन भर्त्सना, मनोराज्य, विचारण शास्त्रों में प्रतिपादित हैं वे सभी उनमें पाई जाती थीं।

गोपियों के प्रेम की दृढ़ता ध्यानव्य है। कभी तो हमें कृष्ण मिलेंगे। हम इसी आस में जीवित हैं। अथवा योग अपना कर हम प्राणायाम की साँस द्वारा इस आस को नहीं मिटाना चाहती।

प्रेम कभी पात्र की भलाई बुराई या अच्छाई नहीं देखता और न वह उसकी तुलना में किसी अच्छे के प्रति उसको छोड़ता ही है। गोपियाँ कहती हैं कि हे ऊधो। हमें तुम्हारे ब्रह्म की बड़ी ज्योति नहीं चाहिये। तुम बड़ी ज्योति का लोभ दिखा रहे हो।) हमें तो उसी मंजुल मुख की काँति औ किरणों की ही चाह है :—

वाही मुख मंजुल की चहाति मरीचें सदा,
हमको तिहारी ब्रह्म ज्योति करिबो कहा।

वास्तव में प्रेम कुछ होता ही ऐसा है जिससे हो गया फिर वह उससे अच्छे को भी नहीं चाहता। जायसी ने भी 'पद्मावत' में यही दिखाया है। 'रत्नसेन' विरह में जल मरने को तैयार होता है। यह देखकर पार्वती उसकी परीक्षा लेने के लिये कृष्ण का रूप धारण करके आती हैं। और कहतीं हैं "तुम्हें एक अप्सरा मिल रही है। अब तुम उसे भूल जाओ"। लेकिन रत्नसेन क्या कहता है :—

भले ही अछरी तार राता।
मोहि दूसरे सौं भाव न वाता।

ठीक वही भावना 'रत्नाकर' की गोपियों में उपर्युक्त पंक्तियों से प्रकट होती है।

गोपियाँ जिस रूप में कृष्ण को अपना चुकी उस रूप को छोड़ने को बड़े अभिमान पूर्वक कहती हैं।

(१) यह अभिान तौ गवै हैं ना गए हूँ प्रान
हम उनकी हैं वह प्रीतम हमारे हैं।
(२) वै तो हैं हमारे ही हमारे ही औ,
हम उनहीं की उनहीं की उनहीं की हैं।

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है जिस वस्तु से किसी को विशेष प्रेम होता है उसके लिये उसे यदि कोई कष्ट सहने से

भी कठिन कार्य कर चुकी हैं। भला तुम्हीं बताओ क्या कोई ऐसा भी होगा जो माणिक्य जैसी वस्तु नौछावर करके मोतियों की इच्छा करेगाः—

नेम व्रत सजंम के पीरे परे को जब,
लाजकुल-कारिन-प्रतिवंधहि निवारि चूं की

× × × ×

मुक्ति मुक्तिताकौ मोलमालहरी कहा है जब,
मोहन ललापैं मन-मानिक ही वारि चुकीं"

गोपियाँ फिर कहती हैं। कि यहाँ पर जोगा' को कौन रमावै? हम कोई ब्रह्म की चेली थोड़े ही हैं हमने आपको बिल्कुल सीधे-सीधे बतलाया कि हम तो एक केवल एक कृष्ण की कमेरी (नौकरानी है।

जोग को रमावै औ समाधि कौं जगावै इहाँ,
सुख—दुख—साधिन सौं निपट निवेरी हैं।

+ + + +

चेरी हैं न ऊधो। काहू ब्रह्म बवा की हम,
सूधै कहै देत एक कान्ह की कमेरी हैं।

कितनी मीठी फटकार उद्धव को पिलाई गई हैं। भाई हमने तुम से कह दिया कि हम तो कृष्ण की दासी हैं।

भक्त की हमेशा इच्छा भगवान को प्राप्त करने की ही होती है। और इसी निमित्त वह (साधना) (प्रेम) करता है। वह थोड़ी सी आपत्ति से घबरा कर मार्ग से भटकता नहीं और न वह यही चाहता है। कि अपने प्रिय से मिलने के लिये प्राण गंवा दिये जाँय। क्योंकि फिर तो उसका अस्तुति ही नहीं रहेगा। इसलिये गोपियाँ कहती हैं :—

काहू तौ जनम में मिलेंगी श्याम सुन्दर सौं,
याहू आस प्रानायाम साँस में उड़ावै कौन।

कहै रत्नाकर कहति सब हा हा खाय,
हाँ के परपंचनि सौं रंच न पसीजियौ ॥

क्योंकि ऐसा करने से :—

आँस भरि ऐहै औ उदास मुख ह्वै है आय
ब्रज दुःख त्रासकी न तातें साँस लीजियौ।

आखिर वह कहना क्या चाहती हैं। यह भी द्रष्टव्य है :—

नामकौ बताइ औ जताइ गाम ऊधौ बस,
श्याम सौं हमारी राम राम कहि दीजियौ ॥

गोपियाँ केवल यही कहती हैं कि तुम कृष्ण से और कुछ न कहना अगर :—

औसर मिलै औ सर ताज कछू पूछहिं तौं,
कहियौ कछू न दशा देखि, सो दिखाइयो।
आइकै कराहि नैन नीर अवगाहि कछु,
कहिबे कौं चाहि हिचकी लै रहि जाइयौ ॥

कितना सुन्दर अभिनयात्मक ढंग है। एक एक शब्द के साथ हृदय लिपटा हुआ चला आता है। कितनी गंभीर अनुभूति है। कवि की मार्मिकता द्रष्टव्य है एक चित्र सा सामने खिंच जाता है। गोचर प्रत्यक्षीकरण कराना ही तो कवि का काम है। कहने का तात्पर्य यह है जहाँ तक 'उद्धव शतक' का संबंध है 'रत्नाकर' जी भक्तों के समान ही भावनामय थे। इसकी सूक्तियाँ भी किसी एक अन्तर्निहित रस में डूबी हुई जान पड़ती हैं। जिस प्रकार "ताज" की कठिन पच्चीकारी में एक स्नेह की अविरल-धारा प्रवाहित होती है उसी प्रकार 'उद्धवशतक' के बेजोड़ रीतिकालीन कलेवर में एक भक्त की आत्मा में निवास करती है। 'रत्नाकर' जी की इससे अधिक तन्मयी काव्य-साधना दूसरी नहीं मिलती। भावभूति की प्रसिद्ध पंक्ति—"एको रसः करुण एक निमित्त भेदात्" भिन्न भिन्न व्यक्तियों को भिन्न भिन्न मात्रा में मान्य होगी। अंग्रेज कवि शेले ने ठीक ही कहा है "Our sweetest songs are those

मिलने का अश्वासन दे तो वह कष्ट सहने को भी तैयार हो जाता है ! यही हाल गोपियों का है । वे उद्धव से कहती हैं कि हम तुम्हारी शिक्षा मानकर सब कष्ट सहन कर लेंगी किन्तु इतना कहदो कि कृष्ण मिल जावेंगे :—

सहिहैं हैं निहारे कहैं साँसति सबै पै बस
एती कहि देतु कै कन्हैयौ मिल जायगौ ।

कितना अनल प्रेम है। केवल कहदो फिर हम सब कष्ट सहने को तैयार हैं।

कृष्ण के कहने के लिये जो संदेश गोपियों द्वारा उद्धव को दिया गया है वह भी एक भक्त हृदय के मार्मिक दीनता युक्त उद्गार है उनमें छल कपट का कोई लेश नहीं है देखिये :—

ऊधौ कहैं सूधौ सो संदेस कहि दीजौ एक
जानति अनेक ना विवेक ब्रज वारी हैं।

× × × ×

भली हैं बुरी हैं औ सलज निरलज्ज हूँ हैं,
जैसी कहो सो हैं पै परिचारिका तुम्हारी हैं ॥

हम जैसी भी भली हैं अथवा बुरी हैं आपकी ही दासी हैं। तुलसी भी कुछ इसी प्रकार कहते थे :—

"खोटो खरो रावरो हौं, रावरे सों झूठ क्यों कहौंगों,
जानो सबही के मन की।"—"विनय पत्रिका"

और कोई कवि होता तो गोपियों द्वारा कृष्ण से कहने को भी कितने ही समाचार गढ़ देता लेकिन रत्नाकर जी का भक्त हृदय जानता था कि प्रेमी के दुख को सुनकर भी प्रिय के हृदय को दुःख होगा जिसे प्रेमी कभी नहीं चाहता । इसलिये गोपियाँ उद्धव से कहती हैं :—

नंद जसुदा औ गाय गोप-गोपिका की कछू
बात वृषभान भौन हूँ की जनि कीजियौ ।

गोपियाँ उदार हैं वे उद्धव का संदेश सुनकर भक्ति मार्गी से ज्ञान मार्गी वन जाती हैं। वहाँ ऐसा कोई प्रसंग नहीं जिसमें व्यंग्यार्थ प्रयोग का अवसर मिले।

परन्तु भागवत के पश्चात् हिन्दी काव्य में जब उद्धव गोपी संवाद को सूर द्वारा अपनाया गया तो परिस्थितियों के कारण सूर ने वहाँ पर सगुण का मंडन (भक्त की विजय) और निर्गुण का खंडन (ज्ञान की पराजय) दिखाया जो काव्य की दृष्टि से बहुत ही उत्कृष्ट वन पड़ा।

आधुनिक काल में 'रत्नाकर' जी ने भी उद्धव गोपी संवाद द्वारा अत्यंत मार्मिक तथा भावपूर्ण काव्य मय पद्धति द्वारा यहीं निर्गुण का खंडन और सगुण का मंडन 'उद्धवशतक' में एक नये मौलिक ढंग से प्रतिपादित किया है। और इस प्रकार एक अनोखा ही रूप 'रत्नाकर' जी ने दिया है। प्रत्येक पद इतना मार्मिक है कि वह सीधे हृदय पर चोट करने वाला है। एक एक शब्द के साथ हृदय लिपटा चला जाता है। संगीतात्मकता और अनुप्रास प्रियता के कारण यह प्रसंग और ही अधिक तन्मय बना देता है और पाठक अथवा श्रोता थोड़ी देर के लिये अपने को भूल जाता है। 'रत्नाकर' जी को किसी बात को कहने के भी न जाने कितने ढंग मालूम थे। वास्तव में ऐसे ही कविता द्वारा इसी ढंग से कहे हुए शब्द ही मनुष्य पर प्रभाव डालने में समर्थ होते हैं। यही कारण है कि गोपियों के वचनों को सुनकर उद्धव भी वहाँ अपनी ज्ञान गठरी को पटक कर सूखे से लौटते हैं।

कवि ने प्रथम ही उद्धव द्वारा कृष्ण को ज्ञान का उपदेश दिला कर निर्गुण का प्रतिपादन कराया है। उद्धव कहते हैं :—

पाँचों तत्व माँहि एक सत्य ही की सत्त सत्य
याही तत्वज्ञान कौ महत्त्व स्रुति गायौ है।
तुम तौ विवेक रतनाकर कहौ क्यों पुनि
भेद पंच भौतिक के रूप में रचायौ है॥

which tell of our saddest thoughts"
—"हमारी श्रेष्ठतम कविता वही है जो करुणतम कथा कहे।"

प्रश्न ५—" 'उद्धव शतक' में अत्यंत मार्मिक तथा भावपूर्ण काव्यमय पद्धति द्वारा निर्गुण का खंडन तथा सगुण का मंडन दृष्टिगोचर होता है।' उदाहरण देते हुए इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिए।

हल—भागवत ही वह ग्रन्थ है जिस पर समस्त कृष्णकाव्य का पवित्र प्रसाद समाधारित है। उद्धव और गोपियों का प्रसंग भी प्रथम बार हमें वहीं देखने को मिलता है। भागवत का भ्रमरगीत प्रसंग हम ऊपर दिखा चुके हैं। यहाँ केवल इतना ही कहना है भागवतकार का उद्देश्य उद्धव गोपी संवाद द्वारा सगुण का मंडन और निर्गुण का खंडन नहीं था। उसने दशम स्कन्ध में जहाँ यह संवाद है केवल ज्ञान की महिमा दिखलाई है जो कि उद्धव द्वारा दिये गये संदेश से यह स्पष्ट है। उद्धव ने कृष्ण का संदेश इस प्रकार कहा है" प्रियगण मेरा वियोग तुमको कभी नहीं हो सकता-मैं देहधारियों का आत्मा होने के कारण सदा तुम्हारे पास हूँ। जैसे पृथ्वी, जल तेज, वायु, आकाश वे पांच महा तत्व सब तत्वों में अवस्थित हैं वैसे ही मैं मन, प्राण बुद्धि और इन्द्रिय और तथा गुणों का आश्रय स्वरूप हूँ। मैं पंचतत्व, इन्द्रिय और त्रिगुण स्वरूपिणी अपनी माया के प्रभाव से अपने ही द्वारा अपने को अपने में उत्पन्न करता हूँ, पालता हूँ और लीन करता हूँ। इस प्रकार तुम सब वासनाओं से शून्य शुद्ध मन को मुझमें लगाकर नित्य मेरा ध्यान करने से शीघ्र ही मुझे पाओगी।"

भगवान का संदेश सुनने से गोपियों को शुद्ध ज्ञान प्राप्त हुआ। उनका विरह शांत हो गया और उन्होंने उद्धव का आदर सत्कार किया। गोपियों ने भागवत में कहीं भी न तो उद्धव की हँसी उड़ाई और न कहीं कुब्जा आदि मथुरा की नारियों को बुरा भला कहा। वहाँ प्रसंग वर्णनात्मक कथा के रूप में है। काव्य की दृष्टि से भागवत का यह प्रसंग किसी प्रकार उत्कृष्ट नहीं है। भागवत की

भक्ति का ज्ञान से इतना अधिक महत्व प्रतिपादित किया है कि रास्ते में ही उद्धव को भक्ति द्वारा प्रभावित दिखा दिया है और गोकुल में पहुँचते ही उनका मन मानस प्रेमवारि से आप्लावित हो उठता है :-

गोकुल के गाँव की गली में पग पारत ही
भूमि कै प्रभाव भाव और भरिवै लगे ।
ज्ञान मारतंड के सुखाये मनु मानस कौं
सरस सुहाए घनश्याम करि वै लगे ।

और फिर वहाँ पहुँच कर उद्धव वही कथन गाथा कहने लगते हैं। वे उन्हें तरह तरह से समझाते हैं कि यदि तुम चाहती हो कि हम कृष्ण में ही रमी रहें तो अपनी आत्मा को परमात्मा में इस प्रकार लीन कर दो कि जिससे जड़ चेतन का भेद ही मिट जाय। तुम व्यर्थ को वियोग मानती हो। तुम भ्रम में पड़ी हो। ऐसा सब माया के कारण से है। कृष्ण तुमसे अलग नहीं हैं वे सब में व्याप्त हैं और उनमें सब का प्रतिबिम्ब है। वह एक ही परब्रह्म हम तुम सभी में इस प्रकार व्याप्त है जैसे काँच के टुकड़ों में एक ही मूर्ति अनेक रूपों में दिखाई देने लगती है।

ऊधो की ऐसी बातें सुन कर गोपियाँ सहम कर सूख गईं। कोई कोई तो वेहोश होगई। उन्हें पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ कि ऐसा संदेश भी कृष्ण भेज सकते हैं क्योंकि उद्धव द्वारा सुनाया गया उपदेश ठीक उसी प्रकार विपरीत था जिस प्रकार कोई विषम-ज्वर के रोगी को रसायन न देकर कोई साधारण जंगल की पत्ती देने लगे। फिर वे कहती हैं कि तुम पहले तो सीधा संदेश सुनाओ कि कृष्ण कब आवेंगे —

ऊधौ कहौ सूधौ सनेस पहिलै तो ह,
प्यारे परदेस तै कब धौं पग पारि हैं।

फिर वह संभल कर कहती हैं कि कहीं तुम भूल तो नहीं कर रहे हो कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम ब्रह्म-दूत बन कर आये हो और

गोपिन में, आपमैं वियोगी औ सँजोग हू मैं
एकै भाव चाहिए सचोय ठहराऔ है।
आपु ही सों आपुकौ मिलाप औ विछोह कहां
मोह यह मिथ्या सुख दुख सब ठायौ है॥

परन्तु कृष्ण वहीं पर उद्धव के निर्गुण को ललकारते हुये कहते हैं कि एक बार पहले गोकुल घूम आओ फिर हम तुम्हारे शिक्षा की भीख मांगने लगेंगे तुम्हें उपदेश देने की आवश्यकता नहीं रहेगी—

प्रेम-नियम निफल निवारि उर अन्तर तै
ब्रह्म ज्ञान आनंद-निधान भरि लै हैं हम।

× × × ×

आवौ एकबार धारि गोकुल गली की धूरि
तब इहिं नीति की प्रतीत धरिलै हैं हम।
मन सों करेजे सों, स्रवन-सिर-आँखिन सौं
उद्धव तिहारी सीख भीख करि लै हैं हम॥

इतना सब कुछ सुनने पर भी उद्धव की बुद्धि का भ्रम दूर नहीं होता और बड़े उत्साह पूर्वक गोकुल जाने को तैयार हो जाते हैं लेकिन जब प्रेम विभोर कृष्ण की दशा निहारते हैं तो सब ज्ञान भूल जाते हैं और धीरे धीरे उनका ज्ञान ध्यान छूट जाता है।

कहै रतनाकर निहारि कान्ह कातर पै
आतुर भये यौं रह्यौ मन न सँभार में॥
ज्ञान गठरी की गाँठि छरकि न जान्यौ कब
हरैं हरैं पूँजी सब सरकि कछार मैं।
डार में तमालनि की कछु बिरमानी अरु
कछु अरुझानी है करीरनिके झार मैं॥

उद्धव का ज्ञान गर्व दूर हो गया। इस बात को कितने भाव पूर्ण काव्यमय ढंग में संगीत की धारा बहाते हुये 'रत्नाकर' जी ने कहा है। एक चित्र सा उपस्थित हो जाता है। "बिरमानी" "अरुझानी" आदि शब्द कितने श्रुतिप्रिय हैं।

इतना कहते कहते गोपियों को क्रोध हो आता है वे उद्धव की यह कहानी अब और नहीं सुनना चाहती। और उन्हें भला-बुरा कहकर फटकारने लगती हैं :—

चुपरहौं ऊधौ सूधौ पथ मथुरा को गहौ,
कहौ ना कहानी जो विविधि कहि आय हौ।

तुम बड़े धूर्त हो जी ! देखने में कितने सीधे लगते हो। कैसी मीठी-मीठी बातें बना रहे हो (लेकिन कितनी कड़ुवी हैं) तुम्हारी ये बातें। (विषकुम्भंक पयोमुखम) :—

रावरी सुधाई मैं भरी है कुटिलाई कूटि,
बात की मिठाई में लुनाई लाइ ल्याएहौ।

सूरकी गोपियां भी उद्धव को इसी तरह से बुरा-भला कहतीं थीं। उन्होंने भी उद्धव को फटकारते हुए :—

" ऊधौ, जाओ वेगि यहाँ तें।"

गोपियाँ ज्ञान को भक्ति के सामने इसी प्रकार तुच्छ समझती हैं, जैसे चिंतामणि के सामने काँच के से टुकड़े। उनके भक्ति रूपी माणिक्य के सामने मुक्ति-मुकता का मोल नहीं। फिर वे कुब्जा पर छींटे उड़ाते हुये कहती हैं :—

लाये लादि वादि हीं लगावन हमारे गरैं,
हम सब जानीं कहौ सुजस कहानी ना।

× × ×

हाय त्रिन मोल हूँ विकी न मग हूँ मैं कहूँ,
तौपै वटपार—टोल लोल हूँ लुभानी ना।
कही मिली मुकति बधूवर के कूवर मैं,
ऊपर भई जो मधुपुर मैं समानी ना।

रत्नाकर जी ने बड़े मार्मिक ढंग से वाग्वैदग्ध्य द्वारा निर्गुण का खंडन और सगुण का समर्थन कराया है। अपने कथन की सत्यता के समर्थन में गोपियों द्वारा कितने सीधे और सामान्य जगत के

यहाँ भूलकर कृष्ण के दूत बन गये हो। यह तो हम भी जानती हैं और तुमसे सहमत भी हैं कि कृष्ण और ब्रह्म एक ही हैं। लेकिन फिर भी हमें अभिन्नता अच्छी नहीं लगती। क्योंकि अभिन्नता में उनका तो कोई बिगाड़ नहीं। लेकिन हमारे तो तुच्छ अस्तित्व के भी लाले पड़ जावेंगे —

कान्ह-दूत कैधौं ब्रह्म-दूत ह्वै पधारे आप,
धारे प्रन फेरत को मति ब्रजवारी की।

× × × ×

जैहैं बनि-बिगरि न बारिधिता बारिध की,
बूँदता बिलैहै बूँद बिवस बिचारी की॥

भक्त हृदय से निकले हुये कितने सीधे उद्गार हैं। भक्त तो हमेशा सामीप्य मुक्त चाहता है जिस में द्वैत का होना आवश्यक है, वह भगवान में एकमेव नहीं होना चाहता। इस चीज को 'रत्नाकर' ने काव्य मय ढंग में वारिध और बूँद का प्रसंग लेकर किस प्रकार ग्राह्य एवं रोचक बना दिया है।

'उद्धवशतक' में तर्क का ठीक वही ढंग गोपियों ने अपनाया है जो नन्द दास के 'भंवरगीत' में। गोपियों के तर्क अकाट्य हैं वे कहती हैं कि उद्धव तुम कहते हो कि ब्रह्म अरूप है रस हीन है वह कहीं नहीं है। और फिर यह भी कहते हो कि त्रिकुटी में ध्यान स्थित करके तुम उसे प्राप्त कर सकती हो। कितनी उलटी बात है। देखने में तर्क कितना सहज स्वाभाविक और गोपियों के भोलेपन का निर्देश करता है पर साथ ही उतना ही अकाट्य भी है :—

" रूप रसहीन जाहि निपट निरूपि चुके,
ताकौ रूप ध्याइबो औ रस चखिबौ कहो।
ऐते बड़े विश्व माँहि हेरैं हूँ न पै यै जाहि,
ताहि त्रिकुटी मैं नैन मूँदि लखिबौ कहौ॥"

खंडन और सगुण का मंडन किया है। यह तथा उद्धव के मथुरा लौटते समय और भी स्पष्ट होजाता है। कृत्रि ने उद्धव पर गोपियों का पूरा प्रभाव दिखा दिया है।। वे ज्ञान भूल जाते हैं और प्रेम-मार्ग के पथिक बन जाते हैं :—

दीन्यौ प्रेम-नेम—गुरुवा-गुन ऊधव कौं,
हियसों हमेव—हरुवाई बहिराइ कै।
× × ×
गोपकी वधूटी प्रेम-बूटी के सहारे मारे,
चल-चित-पारे की भसम भुरकाइ कै॥

रत्नाकर जी ने सगुण का इतना भारी समर्थन किया है कि उद्धव भी उससे इतने प्रभावित दिखाये हैं कि वे गोकुल से लौटना नहीं चाहते। उनके पैर उठते ही नहीं और सारथी उनको बड़ी कठिनाई से उठाकर रथ में बैठाता है।

उद्धव द्वारा कृष्ण को संदेश सुनाया गया है वह पूर्ण रूपेण सगुण की महत्ता प्रतिपादन करना है। जो उद्धव पहले कृष्ण को "एकोअहमद्वितोयोनास्ति" का उपदेश देते हुये दिखाई देते हैं वे ही गोकुल से लौटकर क्या कहते हुये दिखाये गये हैं। देखिए—

छावते कुटीर कहूँ रम्य जमुना के तीर,
गौन रौन-रेती सौं कदापि करते नहीं।
कहै रत्नाकर विहाय प्रेयगाथा गूढ़,
स्मौन रसना में रस और भरते नहीं,
गोपी, ग्वाल, बालनि के उमड़त आँसू देखि,
लेखि प्रलयागम हूँ नेकु डरते नहीं।
हौनो चित चाव जौन रखो चितावन कौ,
तजि ब्रजगाँव इतै पाँव धरते नहीं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'उद्धवशतक' में भी प्रायः अन्य सभी हिन्दी भ्रमरगीतों की तरह सगुण का मंडन और निर्गुण का खंडन बड़े भावपूर्ण काव्यमय एवं मौलिक ढंग से किया गया है।

तथ्य उपस्थित किये गये हैं। कहावत है कि प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं। गोपियाँ इसी को लेकर कहती हैं :—

देखिति सो मानति हैं सूधौ न्याव जानति हैं
लखि ब्रजभूप-रूप अलख-अरूप ब्रह्म.
हम न कहैंगी तुम लाख कहिवौ करौ।

सीधी सी बात है जो बात आँखों के सामने से है वह कानों की सुनी की अपेक्षा अधिक सत्य है। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि तुम तो हमारी समझ में सो रहे हो। क्योंकि तुम्हारी बात का कोई तार-तम्य ही नहीं। कभी तो संसार को स्वप्न के समान बताते हो और कभी जोग करने को कहते हो; कभी ब्रह्म का उपदेश देने लगते हो। हमने तुमसे पचास बार कह दिया कि हम तो केवल एक कृष्ण की कमेरी (दासी हैं) तुम उलट, फेर करके कितनी ही बातें बनाते रहो लेकिन हमारे हृदय से कभी घयश्याम नहीं निकल सकते। वे हमारे प्रीतम हैं और हम उनकी पत्नी हैं। अंत में जब गोपियाँ देखती हैं कि उद्धव किसी प्रकार नहीं मानते और जोग, जोग बके ही चले जाते हैं तो फिर वे कहती हैं कि अच्छा हम तुम्हारा कहा मानकर चलेंगी परन्तु इतना कह दो कि कृष्ण मिल जावेंगे :—

सहिहैं तिहारे कहे साँसति सबै पै बस
एती कहि देहु कै कन्हैयाँ मिलि जायगौ।

प्रायः देखा जाता है कि जब कोई बहुत पीछे पड़ जाता है तो मनुष्य हार करके उसकी बात मानने को इसलिये लाचार हो जाता है कि किसी प्रकार इससे पीछा तो छूटे। ठीक इसी प्रकार की अनुभूति उपर्युक्त पंक्तियों से प्रकट होती है।

इतना होने पर वे उद्धव को कुछ समय के लिये छोड़ती हैं और फिर कृष्ण को उलाहना देने लगती हैं और कुब्जा पर व्यंग्य कसने लगती हैं। रत्नाकर ने तरह तरह से बड़े ही काव्यमय ढंग में इन व्यंग्य वचनों को सजाया है और कितने ही सामान्य जगत के तथ्यों द्वारा प्रस्तुत अप्रस्तुत का सुन्दर सामंजस्य स्थापित करके निर्गुण का

भाव-प्रेषणीयता की क्षमता से लगता है। यदि कवि के भाव पाठक के मर्म पर सीधे चोट करें और पाठक कुछ क्षण के लिये अपने को भूलकर एक अनिर्वचनीय आनन्द में डूबने उतराने लगे तो समझना चाहिये कि कवि की भावुकता में कोई कमी नहीं। 'उद्धवशतक' को इस कसौटी पर कसने से 'रत्नाकर' के भावुक एवं अनुभूति पूर्ण मानस की झाँकी मिलती है। यदि यह कहा जाय कि 'उद्धवशतक' में काव्य के तीनो तत्वों—कल्पना तत्व. रागात्मक तत्व एवं बुद्धि तत्व का एक सुन्दर समन्वय मिलता है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। काव्योत्कर्ष की दृष्टि से प्रथम तो कवि की सूझ ही पाठक को आकर्षित कर लेती है और वह सूझ भी बड़ी मनोवैज्ञानिक सत्य के सहारे सधी हुई है। कोई विशेष बात किसी परिस्थिति ही में मनुष्य हृदय को आक्रान्त करती है और उसका अपना कारण होता है तभी वह समयानकूल एवं प्रभावित करने वाली होती है। इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य के लिये 'रत्नाकर' जी कृष्ण को यमुना स्नान को ले जाते हैं और वहाँ पर एक जलजात को पाने एवं सूँघने के कारण सम्बन्ध भावना (राधा के शरीर की सुगन्ध पद्मनी नायिका होने के कारण पद्म की ही जैसी है। कुछ विद्वानों ने पुष्प को राधा द्वारा सूँघ कर फेंका हुआ बताया है लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है) द्वारा कृष्ण को राधा की याद में विह्वल करके उद्धव को संदेश देने को प्रस्तुत करते हैं जो अति ही स्वाभाविक हो जाता है। वैसे अचानक भी किसी की स्मृति न हो आती, हो ऐसी बात नहीं लेकिन किसी कारण के सहारे कार्य की उत्पत्ति होने से उसका उत्कर्ष उसकी Reasonality बढ़ जाती है। किसी वस्तु की पृष्ठ भूमि आवश्यक है। सूरदास एवं नंद दास आदि में इस प्रकार से ब्रज की याद नहीं दिलाई गई। वहाँ कृष्ण के हृदय में पहले से ही स्मृति बनी हुई है। इस प्रकार रत्नाकर जी ने आरंभ से अंत तक उद्धवशतक को एक मौलिक ढंग से सजाया है। यहाँ हमें उद्धवशतक की मौलिकता से विशेष प्रयोजन नहीं। देखना यह है कि उद्धवशतक में हमारे मर्म पर चोट करने की

प्रश्न ६—"'उद्धवशतक' में काव्यकला के आभ्यन्तर तथा बाह्य दोनों पक्षों का पूर्ण सामंजस्य दिखलाई देता है।" उद्धहरण देते हुए इस कथन का पूर्ण समाधान कीजिये।

हल:— 'उद्धवशतक' 'रत्नाकर' जी की सर्वश्रेष्ठ कृति कहा जाता है। श्रीमद्‌भागवत के क्रोड़ से "भ्रमरगीत" नामक जो पुष्प पुष्पित हुआ, वह हिन्दी साहित्य के महाकवि सूर द्वारा सजाया जाकर भक्ति-संसार को अर्पित कर दिया गया। उस पुष्प को प्रफुल्लित एवं विकसित रखने का प्रयास किसी न किसी ढंग से तदनंतर के कविगण करते रहे। लेकिन सूरदास के पश्चात् पुष्प में कुछ योगदान नहीं हुआ, कविगण उसी की रक्षा में संलग्न रहे। आधुनिक युग में रत्नाकरजी ने उस मुर्झाते हुए पुष्प को एक बार फिर नूतन सुधा से सिंचत कर साहित्य क्षेत्र में गुदगुदी उत्पन्न कर दी। उस घिसे-पिटे प्रसंग को कवि ने ऐसे ढंग से सजाया कि आज वह कवि की ही नहीं अपितु आधुनिक ब्रजभाषा काव्य की सर्वश्रेष्ठ कृति कहा जाता है। कवि ने अपनी संकलन बुद्धि द्वारा प्रारंभ से अपने समय तक की तद्‌विषयक रचनाओं के गुणों का समाहार करके 'उद्धवशतक' की रचना की है। उसमें भक्तों की जैसी भावना एवं संगतिलहरी रीतिकालीन कलेवर में ढकी हुई है। हाँ उसमें आधुनिकता के प्रति काव्य के आभ्यंतर और बाह्य पक्ष की दृष्टि से तथा अन्य सभी दृष्टियों से कवि की उदासीनता झलकती है। इस सबका कारण कवि का व्यक्तित्व था। कवि आधुनिक युग में उत्पन्न होकर विहार करने मध्ययुग में ही जाता रहा।

आचार्यों ने काव्य कला के दो पक्ष बतलाये हैं १—भावपक्ष, २—कलापक्ष दोनों ही काव्य के लिये अत्यन्त ही आवश्यक हैं तथा काव्योत्कर्ष के दोनों का सुन्दर सामंजस्य होना भी परमावश्यक है। कहना नहीं होगा कि 'उद्धवशतक' में काव्यकला के दोनों— भावपक्ष एवं कलापक्ष का अति ही सुन्दर सामंजस्य मिलता है। कवि की भावुकता का पता उसकी अनुभूति की गहराई एवं

स्मृति संचारी के द्वारा कवि ने सरल हृदय के पट को खोल कर उपस्थिति कर दिये हैं। अब कृष्ण को अपनी परिस्थिति में तनिक भी चैन नहीं पड़ता। उन्हें मणि जड़ित मुकुट आदि राजसी ठाठवाट तनिक भी नहीं सुहाता न "हरि औध" के कृष्ण की तरह वहाँ गाँधी वाद तथा कर्मवाद की ही चिंता रहती है जो कि अति ही स्वाभाविक है। हरि औध जी ने गाँधी वाद के प्रभाव के कारण स्वाभाविकता की हत्या कर दी है। 'रत्नाकर' जी के कृष्ण सीधे निष्कपट रूप से हृदय को खोल देते हैं उन्हें ब्रज का तुच्छ वैभव भी मथुरा के राजसी ठाठवाट से अच्छा लगता है। और लगे भी क्यों न ? ब्रज में उनका घर था एक उर्दू के शायर ने ठीक ही कहा है—

"है जन्नत से प्यारा हमारा वतन"।

कृष्ण कहते हैं मैं ब्रज को छोड़ कर इस राजासी ठाटवाट में क्या करूँ :—

मोर के पखौवीन कौ मुकुट छवीली छोरि,
क्रीट मणि मंडित धराइ करि है कहा।.......आदि

× × ×

कहत गुपाल माल मंजु मनि पुंचन की,
गुंजन की माल की मिसाल वि छावै न ।

प्रेमी हृदय के प्रमोद्गार कुछ ऐसे ही होते हैं।

भावों की ऐसी उत्कृष्ट व्यंजना के लिये रत्नाकर जी ने अनुभावों की सजीव योजना, मूकभाव व्यंजना, चित्रोपमता एवं अभिनयात्मक प्रणाली का आश्रय ग्रहण किया और साथ ही संगीत लहरी द्वारा उन्हें तन्मय करने की शक्ति प्रदान की है। यद्यपि अनुभावों एवं विभावों की योजना रीतकालीन कवियों देव, विहारी पद्मकार आदि कवियों में भी अपने प्रचुर रूप में पाई जाती है लेकिन इन लोगों ने कहीं २ चमत्कार के चक्कर में पड़ कर मार्मिकता को मार दिया है पाठक एक चकाचौंध में तो पड़ जाता है लेकिन मन्तव्य तक नहीं पहुँच पाता। 'रत्नाकर जी' कहीं भी चमत्कार के

कितनी शक्ति है—वह हमें कहाँ तक मुग्ध करता है। उसके भाव कहाँ तक स्वाभाविक एवं साधारणीकारण के योग्य हैं प्रत्येक काव्य में आत्मतुष्टि (स्वांतसुखाय) के साथ पर-तुष्टि की क्षमता भी आवश्यक है। इसके लिये कवि की भाव प्रेषणीयता की शक्ति को खोजना पड़ता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि रत्नाकर जी की भाव व्यंजना सर्वत्र मर्मस्पर्शिणी, स्वाभाविक एवं आवेगमय है। प्रत्येक शब्द सीधे अनुभूति पूर्ण हृदय का मधुर सृजन है केवल बुद्धि का चमत्कार या कोरी कवि कल्पना नहीं शब्द के अंतस में एक ऐसी रस सुधा प्रवाहित होती है जो हृदय की प्यास बुझाती है। हो भी क्यों न ? रत्नाकर जी ने कहीं से सुनकर या प्रयत्न करके 'उद्धव-शतक' की रचना नहीं की। यह तो उनके जीवन व्यापी शृंगार में छिपी हुई दुःख की छाया को साकार करने का एक रूप है। प्रत्येक भाव स्वयं का अनुभव किया हुआ है। यही कारण है कि 'उद्धव-शतक' में पुरुष पक्ष में भावों की तीव्रता एवं मार्मिकता स्त्रीपक्ष की भावुकता एवं मार्मिकता से अधिक स्वाभाविक वन पड़ी है। मेरे कहने का तात्पर्य नहीं कि गोपियों के कथन में स्वाभाविकता है ही नहीं—स्वाभाविकता तो वहाँ भी उच्चकोटि की है लेकिन पुरुपपक्ष में और भी अधिक है श्री कृष्ण की व्रज स्मृति के छन्दों में भाव उमड़े पड़ते हैं। हृदय से हूक उठने लगती है कृष्ण अपने को वश में नहीं रख पाते। उन्हें नंद यशोदा का लाड़ चाव, गोपियों का प्रेम यमुना से पुलिन के कछार याद आने पर मानों पुकारते हों—

आजाओ कृष्ण आजाओ—
नंद और जसोमति के प्रेम भरे पालन की

× × ×

सुधि व्रज वासिन उसे दिवैया सुख-रासिनि की,
ऊधौ नित हमकौं बुलावन कौं आवती।

कोऊ श्याम श्याम कै वह कि विललानी कोऊ,
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी हैं।

अनुभावों की ऐसी ही उत्कृष्ट एवं मूर्तिमान योजना उद्धव की गोपियों की दीन दशा देख कर जो हालत हुई है उसके वर्णन में मिलती है :—

सूखे से स्रमे से सक व केसे थके,
× × ×
हारे से, हरे से रहे हेरत हिराने से।

उपर्युक्त पक्तियाँ भौचक्के ऊधों की एक प्रतिमा ही सामने उपस्थित कर देती है।

यहाँ तक तो हुई अनुभाव विधान की वात। तव नूक भाव व्यंजना पर प्रकाश डालना आवश्यक है कभी २ देखा जाता है कि कहने से किसी वात का इतना प्रभाव नहीं पड़ना जितना उस समय मौन रहने से प्रभाव पड़ जाता है। 'रत्नाकर' जी ने भी इस शैली को भाव व्यंजना के लिये अपनाया है। कृष्ण वहुत कुछ गोपियों से कहने के लिये कहना चाहते हैं लेकिन भावाधिक्यता के कारण कुछ कह नहीं पाते। लेकिन उनसे कुछ कहते नहीं वना :—

कहा कहैं ऊधो सां कहैं, हूँ तो कहाँ लौं कहैं
कैसे कहैं, कहै पुनि कौन सी उठानि तैं
तौलों अधिकाई तैं उमगि कंठ आइभिच
नीर ह्वै वहन लागी वात अँखियान तैं।

कृष्ण रोने लगते हैं लेकिन फिर भी उन्हें कुछ कह सकने की आशा है इसलिये वे उद्धव के रथ के साथ ही लगे चले जाते हैं:—

उसंसि उसाँसनि सौं वहि वहि आँसनि सौं
भूरि भरे हिय के हुलास ना डरात हैं।
सीरे तपे विविधि संदेसनि की वातनि की
गातनि की झौंक में लगेई चले जात हैं,

लोभ में नहीं फसे। उनके अनुभाव विधान में भाव धारा बराबर प्रवाहित होती रहती है। कला की पच्चीकारी के साथ उसमें एक विरह की आत्मा झाँकती रहती है। कुछ उदाहरण देखिये।

(१) गहबरि आयौ गरौ, भभरि अचानक त्यौं,
प्रेम परयो चपल चुचाई पुतरीनि सौं।
नैंकु कहीं बैननि अनेक कही नैननि सौं,
रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं॥

रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनी सौं, सात्विक भावों की स्वाभाविक योजना का कैसा सुन्दर प्रयोग है। जिस कार्य को साधारण कवि सारी करामातें दिखाकर के भी नहीं कर पाते उसे अपने सूक्ष्म कौशल द्वारा संपन्न कर लिया है। हृदय के शोक, पीड़ा, हृप व्याकुलता आदि को आँसू कितनी सरलता से तथा निष्कपटता से प्रकट कर देते हैं। जो काम वाणी नहीं कर पाती उसे आँसू की छोटी २ बूँदें कर देती हैं। उपर्युक्त उदाहरण में रत्नाकर जी ने आँसुओं से अपनी भावव्यंजना में किस प्रकार सहायता ली है।

किसी किसी छंद में 'रत्नाकर' जी ने एक साथ ही अनेक सात्विकों और अनुभावों की सजीव योजना की है पर कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आने पाई है। उद्धव द्वारा दिये अप्रत्याशित ज्ञानोपदेश का ब्रजबालाओं के समूह पर क्या प्रभाव पड़ा, उससे हृदय में अलग अलग क्या प्रतिक्रिया हुई। इसका वर्णन अलग २ आलंकन होने से कितना स्वाभाविक बन पड़ा है देखिये :—

सुनि २ ऊधव की अकह कहानी कान,
कोऊ थहरानी, कोऊ थानहि थिरानी हैं।
कहै रत्नाकर रिसानी, बररानी कोऊ,
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी हैं॥
कोऊ सेद-साकी-कोऊ भरि दृगपानी रही,
कोऊ घूमि-घूमि परी भूमि मुरझानी हैं।

यहाँ 'राम राम' पद कैसा भाव व्यंजक है। प्रेमी इसलिये अपने दुःख को प्रिय से नहीं कहना चाहता कि उसे सुनकर उसको भी दुःख होगा। कितनी स्वाभाविक एवं गहन अनुभूति से युक्त छंद है देखते ही बनता है। सूर की गोपियों ने भी प्रेम की इसी उत्कृष्टता के कारण कहा है कि हे कृष्ण, हम भले ही दुःख पावें पर तुम सुखी रहो।

जहँ जहँ रहौ राज करौ तहँ तहँ लेहु कोटि सिर भार।

"सूर"

ऐसे ही कितने ही अनेक छंद हैं जिनसे गोपियों के प्रेमी हृदय को सच्चे स्वाभाविक एवं मार्मिक भावों की योजना मिलती है।

अब कुछ इसकी दृष्टि से भी उद्धवशतक पर विचार करना भी असंगत न होगा। स्पष्ट ही है कि उद्धवशतक विप्रलभ शृंगार का काव्य है जिसमें उभय पक्ष में समानता दिखाई गई है। अन्यत्र सूर आदि में गोपियों के पक्ष में प्रेम की उत्कटता अधिक दिखाई गई है—जो कि भारतीय परंपरा के कारण है लेकिन रत्नाकर जी ने उभय पक्ष में समान रूप ही रक्खा है। कृष्ण और गोपिकायें आलम्बन हैं। कृष्ण के लिये यमुना पर जलजात का पाना उद्दीपन विभाव के रूप में है। और ब्रज-भूमि की याद स्मृति संचारी के रूप में। प्रेम और भक्ति से परिप्लावित कृष्ण, गोपियों और आगे चलकर भक्ति-प्रेम से सिंचित उद्धव में पुलकावली, अश्रु प्रवाह, उच्छ्वास कंठावरोध प्रस्वेद, वैवर्ण्य, कंप आदि अनेक अनुभाव यथोचित रूप से यथास्थान प्रदर्शित किये गये हैं।

भावों के अतिशय को व्यंजित करने के लिये कहीं कहीं कवि ने रीतिकालीन ऊहापद्धति का अनुसरण भी किया है। विरहाग्नि के कारण पत्र लिखना भी असंभव हो गया है—

सूखि जाति स्याही लेखनी के नैकु डंक लागैं।
अंक लागै कागद बररि बरि जात हैं।"

मौन भाव व्यंजन का इससे सुन्दर उदाहरण और क्या हो सकता है। भावातिसयता के कारण कृष्ण के हृदय में जो प्रतिक्रिया हुई उसके दबाव के कारण कृष्ण का उद्धव के रथ के साथ लगे जाना कितना स्वाभाविक व्यापार है। शब्दों का चयन भी भावानुकूल रखकर कवि ने छन्दोत्कर्ष को दुगुना कर दिया है। "बातनि की" "घातनि की," "लगेई चले जात हैं" शब्दों में कैसी गति है ऐसा मालूम देता है कृष्ण के साथ साथ शब्द भी रथ के पीछे लगे जा रहे हों। इससे अधिक व्यंजना पूर्ण शैली और कोई हो सकती है तो केवल अभिनयात्मक शैली। उसे भी अपना कर रत्नाकर जी ने 'उद्धवशतक' को चार चाँद लगा दिये हैं। अभिनयात्मक शैली का सर्वश्रेष्ठ छंद अवलोकनीय है। एक स्थान पर गोपियाँ कृष्ण को संदेश भेजते हुये कहती हैं, कि यदि—

औसर मिले औ सरताज कछु पूछहि तौ
कहियौ कछून दशा देखी सो दिखाइयौ
आह कै कराहि नैन नीर अवगाहि कछु,
कहि वे कौं चाहि हिचकी लै रहि जाइयौ।

कहना कुछ नहीं (क्योंकि कहने से तुम हमारी दशा का ठीक वर्णन नहीं कर सकोगे) केवल कराह करके रह जाना। लेकिन गोपियाँ फिर कहती हैं कि तुम—

नंद जसुदा औ जाय गोप गोपिका की कछू
बात वृषभान भौन हू की जनि कीजयौ

क्योंकि ऐसा करने से—

आँसु भरि ऐहै औ उदास मुख है है हाय
ब्रज दुःख त्रास की न तातैं सांस लीजियों

आखिर गोपियाँ कहना क्या चाहती हैं ? केवल इतना ही कहना—

नाम कौं बताइऔ जताइगान ऊधौ बस
स्याम सौं हमारी राम राम कहि दीजियौ।

यथा स्थान हुये हैं श्लेप का जैसा निर्वाह ऋत वर्णन के छः छन्दों में हुआ है उसे पढ़कर तो सेनापति के श्लेप वर्णन की याद आती है। साँग रूपकों में रत्नाकर जी की मौलिक उद्‌भावनाओं के दर्शन दृष्टव्य हैं। इनके साँग रूपक होमर की सिमलीज (Homeric Similies) की याद दिलाते हैं। अलंकारों के विपय में केवल इतना ही और कहना है कि उद्धवशतक में यद्यपि शब्दालंकारों की भी कमी नहीं फिर भी अर्थालंकारों की बहुलता है। लेकिन न तो शब्दालंकारों ने ही भावसंवेदना में व्यार्थी प्रस्तुत किया और न अर्थालंकारों ने ही भावोत्कर्प में कमी की है। परन्तु कुछ छन्दों में अलंकारोंका प्रयोग यह प्रकट अवश्य करता है कि रत्नाकर जी अलंकार विपय को प्रयुक्त करना चाहते थे।

रत्नाकर जी साहित्य शास्त्र के मार्मिक आचार्य तो थे ही साथ ही व्रजभापा के भी प्रकांड पंडित थे व्रजभापा पर उन्हें अधिकार था इस लिये उन्होंने व्रजभापा साहित्य का गहन अध्ययन किया था। जैसा पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्रजी ने कहा है, 'व्रजभापा में उनके ऐसा भापामर्मज्ञ इधर बहुत दिनों से नहीं हुआ।' व्रजभापा के रूप को स्थिरिता देने की चेतना पहली बार रत्नाकर में देखने को मिलती है।" व्रजभापा को साहित्योचित एक रूपता देने का जो कार्य आचार्य केशव के द्वारा उठाया गया था तथा महाकवि विहारीलाल के द्वारा आगे बढ़ाया जाकर कविवर घनानंद के के द्वारा प्रौढ़ किया गया था वही अब रत्नाकर जी के द्वारा पूर्ण किया गया है।" 'उद्धवशतक' की भापा भावानुकूल ओज एवं प्रसाद गुण युक्त है माधुर्य गुण का भी अभाव नहीं है। भापा और भावों में पूर्ण सामंजस्य है कहीं २ तो भापा और भावों में होड़ सी लगाई है देखिये:—

सीरे तपे विविध संदेसनि की वातिन की
घातनि की झोंक में लगेई चले जात हैं।

यहाँ तक तो उद्धवशतक के भावपक्ष की बात रही अब उसके कलापक्ष पर ध्यान देना चाहिये। यद्यपि यह सत्य है कि काव्य में भाव पक्ष ही प्रधान होता है परन्तु काव्योत्कर्ष के लिये कलापक्ष की भी अवहेलना नहीं की जा सकती। यदि कवि की अनुभूति गहरी है उसके भाव उच्चकोटि के मर्मस्पर्शी हैं लेकिन उसके पास उन्हें व्यक्त करने की समुचित सामग्री नहीं—अगर भावों के अनुकूल भाषा नहीं, छन्द ऐसा है कि वह एक बात को पूरी नहीं कर सकता या वाक्य विन्यास एवं शब्द चयन ठीक नहीं। तो भावों का ठीक वही हाल होगा जैसे किसी फूहड़ के हाथ पड़े धान का। इसलिये काव्योत्कर्ष के लिये भाव पक्ष में सामंजस्य आवश्यक है। कहना नहीं होगा कि 'उद्धवशतक' में काव्य कला के दोनों पक्षों का सुन्दर सामंजस्य हुआ है।

कलापक्ष में प्रमुख रूप से भाषा अलंकार छंद विधान, वाक्य विन्यास एवं शब्द चयन पर दृष्टि रखी जाती है।

भावों में उत्कर्ष आने वाली तथा रचना में चमत्कार उत्पन्न करने वाली कुछ विधियां हैं। लेकिन ऐसा तभी तक संभव है जब तक कि अलंकार हैं। साधन रूप में ही आवे साध्य रूप में नहीं। 'उद्धव-शतक' के प्रायः सभी अलकार साधन रूप में ही प्रयुक्त हुये हैं। अलंकार का प्रयोग करने के लिये अथवा उदाहरण देने के लिये 'उद्धवशतक' की रचना नहीं हुई है। 'उद्धवशतक' गत अलंकारों में अनुप्रास तो जैसे इस काव्य में प्राण ही फूँक देता है पर अन्य अलंकार भी किसी विशेष उत्कर्ष के लिये किसी विशेष स्थान पर स्वतः ही आकर अपना कार्य कर जाते हैं उन्हें कुछ छन्दों को छोड़कर जैसे छन्द (१०१) आदि बलपूर्वक नहीं लाया गया। अलंकारों के पूर्ण निर्वाह के लिये कवि की मौलिक उद्भावनायें तो कमाल कर गई हैं। लेकिन भाव हत्या नहीं हुई है। अनुप्रास तो सभी छन्दों में प्रचुरता से पाया जाता है इसके अतिरिक्त श्लेष रूपक उपमा उत्प्रेक्षा, स्मरण, विभावना, असंगत आदि अनेक अलंकारों के प्रयोग

विक ही हैं। रत्नाकरजी सम्पूर्ण काव्य का छन्द विधान की दृष्टि से अनुशीलन करने पर हमें उसमें तीन प्रकार के कवित्तों का प्रयोग मिलता है।—(१) मनहरण (२) जल हरण और (३) घनाक्षरी इसके अतिरिक्त छंद विधान के सम्बन्ध में इतना ही कहना काफी होगा कि उद्धवशतक का छन्द विधान निर्दोष है। और होना भी चाहिये क्योंकि रत्नाकर जी पिंगल शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे। ठीक ही रहा है कि छन्दों की कारीगरी और संगीतामकता में रत्नाकर जी की अधिकार पूर्ण कलम स्वीकार की गई हैं—विशेषतः उनके कवित्त बे जोड़ हुये हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भावों की गहन अनुभूति के साथ ही साथ कलापक्ष की सुघरता का ध्यान भी रत्नाकरजी को आदि से अन्त तक सर्वत्र बना रहा और कहीं भी अनिष्ट नहीं होने पाया। उद्धवशतक में काव्यकला के दोनों पक्षों का ऐसा सुन्दर सामंजस्य उसकी श्रेष्ठता को और भी बढ़ा देता है।

प्रश्न ७—उद्धवशतक मुक्त काव्य है अथवा खंड काव्य? दोनों दशाओं में इस काव्य या काव्य संग्रह के नायक या नायिकाओं की निर्णयात्मक विवेचना कीजिए।

उत्तर—रत्नाकर जी आधुनिक युग में उत्पन्न होकर के भी पूर्णतया मध्यकालीन कवि थे। भावना उनकी प्रायः भक्तों की रही और कला रीतिकालीन कवियों की। रत्नाकर जी ने कला की दृष्टि से जहाँ तक उद्धवशतक का प्रश्न है पद्माकर आदि से अधिक प्रभावित रहे। लेकिन रीतिकालीन कवि जहाँ एक ओर फुटकल पदों में मुक्तक काव्य की रचना में संलग्न रहे वहाँ रत्नाकर जी अपनी समन्वय बुद्धि द्वारा मुक्तक एवं प्रबन्ध दोनों का सामंजस्य करने में सफलीभूत हुए।

आचर्यों ने काव्य को कई सिद्धान्तों के आधार पर कई प्रकार से विभक्त किया है। ऐन्द्रिक प्रत्यक्षता के आधार पर काव्य के दृश्य और श्रव्य दो विभाग किये हैं; और काव्य वस्तु या वर्ण

यह उस समय का चित्र है जब कि कृष्ण भावातिरेक के कारण मुख से तो कुछ कह नहीं पाते लेकिन कुछ कहना चाहते हैं और इसी आशा में उद्धव के रथ के साथ लगे चले जाते हैं। यहाँ पर "बातनि की" घातनि की" लगे ही चले जाते हैं। शब्दों का प्रयोग कितना प्रवाहपूर्ण एवं परिस्थति अनुकूल है। ऐसा मालूम पड़ता है मानों शब्द भी रथ के पीछे कृष्ण के साथ ही जा रहे हों। कहने तात्पर्य यह है कि क्या भाषा क्या शब्द चयन सभी भावानुकूल है।

भाषा पर अधिकार प्रगट करने वाली एक वस्तु और होती है वह है बिना तोड़ मरोड़ किये अनुप्रास का सफल निर्वाह एवं शब्दों की अनिवार्य सत्ता। मँजी हुई अधिकृत भाषा वही कही जासकती है जिसमें किसी भाव के लिये व्यंजना के लिये प्रयोग किया हुआ शब्द यदि हटा दिया जाय तो उसका उत्कर्ष ही जाता रहे। कहने का तात्पर्य यह है कि भरती के शब्दों को काव्य में कोई स्थान नहीं। कहना नहीं होगा कि उद्धवशतक में शब्दों की सत्ता अनिवार्य है उन्हें बिना भाव हत्या किये स्थानांतरित नहीं किया जा सकता।

उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त उद्धवशतक की भाषा में चित्रोपमता भी सुन्दर रूप से पाई जाती है। कुछ कतिपय छन्दों को छोड़कर प्रत्येक छन्द एक चित्र काव्य है। संगीत लहरी के कारण माधुर्य की प्रचुरता है जो रत्नाकर जी को टेनीसन की कोटि में बैठाती है। स्वर्गीय बाबू श्यामसुन्दर दास ने ठीक ही रहा कि 'छन्द संघटन, भाषा सौंदर्य-संगीत में—कविता के कलापक्ष की सुघरता में यदि रत्नाकर की तुलना अंग्रेज कवि टेनीसन से की जाय तो कोई अत्युक्ति न होगा भाषा में देव की मनोहारिता, बिहारी का वाग्वैदग्ध्य, मतिराम की सरलता, घनानंद की लाक्षणिकता और पद्माकर की अनुप्रास प्रियता व प्रवाह एवं ओज गुण मिलते हैं।

रत्नाकर जी का उद्धवशतक काव्य वर्णन विषय के अनुकूल ही कवित्त छन्द में लिखा गया है। इसे घनाक्षरी भी कह सकते हैं यह वर्णिक छन्द है इसलिये संपूर्ण काव्य में वर्णमैत्री के दर्शन स्वाभा-

विक ही हैं। रत्नाकरजी सम्पूर्ण काव्य का छन्द विधान की दृष्टि से अनुशीलन करने पर हमें उसमें तीन प्रकार के कवित्तों का प्रयोग मिलता है।—(१) मनहरण (२) जल हरण और (३) घनाक्षरी। इसके अतिरिक्त छंद विधान के सम्बन्ध में इतना ही कहना काफी होगा कि उद्धवशतक का छन्द विधान निर्दोष है। और होना भी चाहिये क्योंकि रत्नाकर जी पिंगल शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे। ठीक ही रहा है कि छन्दों की कारीगरी और संगीतात्मकता में रत्नाकर जी की अधिकार पूर्ण क़लम स्वीकार की गई हैं—विशेषतः उनके कवित्त वे जोड़ हुये,हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भावों की गहन अनुभूति के साथ ही साथ कलापक्ष की सुघरता का ध्यान भी रत्नाकरजी को आदि से अन्त तक सर्वत्र बना रहा और कहीं भी अनिष्ट नहीं होने पाया। उद्धवशतक में काव्यकला के दोनों पक्षों का ऐसा सुन्दर सामंजस्य उसकी श्रेष्ठता को और भी बढ़ा देता है।

प्रश्न ७—उद्धवशतक मुक्त काव्य है अथवा खंड काव्य? दोनों दशाओं में इस काव्य या काव्य संग्रह के नायक या नायिकाओं की निर्णयात्मक विवेचना कीजिए।

उत्तर—रत्नाकर जी आधुनिक युग में उत्पन्न होकर के भी पूर्णतया मध्यकालीन कवि थे। भावना उनकी प्रायः भक्तों की रही और कला रीतिकालीन कवियों की। रत्नाकर जी ने कला की दृष्टि से जहाँ तक उद्धवशतक का प्रश्न है पद्माकर आदि से अधिक प्रभावित रहे। लेकिन रीतिकालीन कवि जहाँ एक ओर फुटकल पदों में मुक्तक काव्य की रचना में संलग्न रहे वहाँ रत्नाकर जी अपनी समन्वय बुद्धि द्वारा मुक्तक एवं प्रबन्ध दोनों का सामंजस्य करने में सफलीभूत हुए।

आचर्यों ने काव्य को कई सिद्धान्तों के आधार पर कई प्रकार से विभक्त किया है। ऐन्द्रिक प्रत्यक्षता के आधार पर काव्य के दृश्य और श्रव्य दो विभाग किये हैं; और काव्य वस्तु या वर्ण

यह उस समय का चित्र है जब कि कृष्ण भावातिरेक के कारण मुख से तो कुछ कह नहीं पाते लेकिन कुछ कहना चाहते हैं और इसी आशा में उद्धव के रथ के साथ लगे चले जाते हैं। यहाँ पर "बातनि की" घातनि की" लगे ही चले जाते हैं। शब्दों का प्रयोग कितना प्रवाहपूर्ण एवं परिस्थति अनुकूल है। ऐसा मालूम पड़ता है मानों शब्द भी रथ के पीछे कृष्ण के साथ ही जा रहे हों। कहने तात्पर्य यह है कि क्या भाषा क्या शब्द चयन सभी भावानुकूल है।

भाषा पर अधिकार प्रगट करने वाली एक वस्तु और होती है वह है बिना तोड़ मरोड़ किये अनुप्रास का सफल निर्वाह एवं शब्दों की अनिवार्य सत्ता। मँजी हुई अधिकृत भाषा वही कही जासकती है जिसमें किसी भाव के लिये व्यंजना के लिये प्रयोग किया हुआ शब्द यदि हटा दिया जाय तो उसका उत्कर्ष ही जाता रहे। कहने का तात्पर्य यह है कि भरती के शब्दों को काव्य में कोई स्थान नहीं। कहना नहीं होगा कि उद्धवशतक में शब्दों की सत्ता अनिवार्य है उन्हें बिना भाव हत्या किये स्थानांतरित नहीं किया जा सकता।।

उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त उद्धवशतक की भाषा में चित्रोपमता भी सुन्दर रूप से पाई जाती है। कुछ कतिपय छन्दों को छोड़कर प्रत्येक छन्द एक चित्र काव्य है। संगीन लहरी के कारण माधुर्य की प्रचुरता है जो रत्नाकर जी को टेनीसन की कोटि में बैठाती है। स्वर्गीय बाबू श्यामसुन्दर दास ने ठीक ही रहा कि 'छन्द संघटन, भाषा सौंदर्य-संगीन में—कविता के कलापक्ष की सुघरता में यदि रत्नाकर की तुलना अंग्रेज कवि टेनीसन से की जाय तो कोई अत्युक्ति न होगा भाषा में देव की मनोहारिता, बिहारी का वाग्वैदग्ध्य, मतिराम की सरलता, घनानंद की लाक्षणिकता और पद्माकर की अनुप्रास प्रियता व प्रवाह एवं ओज गुण मिलते हैं।

रत्नाकर जी का उद्धवशतक काव्य वर्णन विषय के अनुकूल ही कवित्त छन्द में लिखा गया है। इसे घनाक्षरी भी कह सकते हैं यह वर्णिक छन्द है इसलिये संपूर्ण काव्य में वर्णमैत्री के दर्शन स्वाभा-

यह उस समय का चित्र है जब कि कृष्ण भावातिरेक के कारण मुख से तो कुछ कह नहीं पाते लेकिन कुछ कहना चाहते हैं और इसी आशा में उद्धव के रथ के साथ लगे चले जाते हैं। यहाँ पर "बातनि की" घातनि की" लगे ही चले जाते हैं। शब्दों का प्रयोग कितना प्रवाहपूर्ण एवं परिस्थति अनुकूल है। ऐसा मालूम पड़ता है मानों शब्द भी रथ के पीछे कृष्ण के साथ ही जा रहे हों। कहने तात्पर्य यह है कि क्या भाषा क्या शब्द चयन सभी भावानुकूल है।

भाषा पर अधिकार प्रगट करने वाली एक वस्तु और होती है वह है बिना तोड़ मरोड़ किये अनुप्रास का सफल निर्वाह एवं शब्दों की अनिवार्य सत्ता। मँजी हुई अधिकृत भाषा वही कही जासकती है जिसमें किसी भाव के लिये व्यंजना के लिये प्रयोग किया हुआ शब्द यदि हटा दिया जाय तो उसका उत्कर्ष ही जाता रहे। कहने का तात्पर्य यह है कि भरती के शब्दों को काव्य में कोई स्थान नहीं। कहना नहीं होगा कि उद्धवशतक में शब्दों की सत्ता अनिवार्य है उन्हें बिना भाव हत्या किये स्थानांतरित नहीं किया जा सकता।

उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त उद्धवशतक की भाषा में चित्रोपमता भी सुन्दर रूप से पाई जाती है। कुछ कतिपय छन्दों को छोड़कर प्रत्येक छन्द एक चित्र काव्य है। संगीत लहरी के कारण माधुर्य की प्रचुरता है जो रत्नाकर जी को टेनीसन की कोटि में बैठाती है। स्वर्गीय बाबू श्यामसुन्दर दास ने ठीक ही कहा कि 'छन्द संघटन, भाषा सौंदर्य-संगीत में—कविता के कलापक्ष की सुघरता में यदि रत्नाकर की तुलना अंग्रेज कवि टेनीसन से की जाय तो कोई अत्युक्ति न होगा भाषा में देव की मनोहारिता, बिहारी का वाग्वैदग्ध्य, मतिराम की सरलता, घनानंद की लाक्षणिकता और पद्माकर की अनुप्रास प्रियता व प्रवाह एवं ओज गुण मिलते हैं।

रत्नाकर जी का उद्धवशतक काव्य वर्णन विषय के अनुकूल ही कवित्त छन्द में लिखा गया है। इसे घनाक्षरी भी कह सकते हैं यह वर्णिक छन्द है इसलिये संपूर्ण काव्य में वर्णमैत्री के दर्शन स्वाभा-

विक ही हैं। रत्नाकरजी सम्पूर्ण काव्य का छन्द विधान की दृष्टि से अनुशीलन करने पर हमें उसमें तीन प्रकार के कवित्तों का प्रयोग मिलता है।—(१) मनहरण (२) जल हरण और (३) घनाक्षरी इसके अतिरिक्त छंद विधान के सम्बन्ध में इतना ही कहना काफी होगा कि उद्धवशतक का छन्द विधान निर्दोष है। और होना भी चाहिये क्योंकि रत्नाकर जी पिंगल शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे। ठीक ही रहा है कि छन्दों की कारीगरी और संगीतात्मकता में रत्नाकर जी की अधिकार पूर्ण कलम स्वीकार की गई हैं—विशेषतः उनके कवित्त बे जोड़ हुये हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भावों की गहन अनुभूति के साथ ही साथ कलापक्ष की सुघरता का ध्यान भी रत्नाकरजी को आदि से अन्त तक सर्वत्र बना रहा और कहीं भी अनिष्ट नहीं होने पाया। उद्धवशतक में काव्यकला के दोनों पक्षों का ऐसा सुन्दर सामंजस्य उसकी श्रेष्ठता को और भी बढ़ा देता है।

प्रश्न ७—उद्धवशतक मुक्त काव्य है अथवा खंड काव्य? दोनों दशाओं में इस काव्य या काव्य संग्रह के नायक या नायिकाओं की निर्णयात्मक विवेचना कीजिए।

उत्तर—रत्नाकर जी आधुनिक युग में उत्पन्न होकर के भी पूर्णतया मध्यकालीन कवि थे। भावना उनकी प्रायः भक्तों की रही और कला रीतिकालीन कवियों की। रत्नाकर जी ने कला की दृष्टि से जहाँ तक उद्धवशतक का प्रश्न है पद्माकर आदि से अधिक प्रभावित रहे। लेकिन रीतिकालीन कवि जहाँ एक ओर फुटकल पदों में मुक्तक काव्य की रचना में संलग्न रहे वहाँ रत्नाकर जी अपनी समन्वय बुद्धि द्वारा मुक्तक एवं प्रबन्ध दोनों का सामंजस्य करने में सफलीभूत हुए।

आचार्यों ने काव्य को कई सिद्धान्तों के आधार पर कई प्रकार से विभक्त किया है। ऐन्द्रिक प्रत्यक्षता के आधार पर काव्य के दृश्य और श्रव्य दो विभाग किये हैं; और काव्य वस्तु या वर्ण

विषय के आधर पर काव्य के निम्न प्रकार से विभाग किये गये हैं।

१ वर्णनात्मक काव्य—जिसमें किसी प्राकृतिक अथवा मानव रचित दृश्य आदि का वर्णन किया जाता है।

(२) प्रबंधात्मक अथवा कथात्मक—जिसमें एक आधार रख कर किसी कथा के आधार पर कथा लिखी जाती है। और (३) जिसमें प्राय: ऐसे संगीतात्मक छंद रहते हैं जो स्वतंत्र रूप से अपने पूर्ण भावों को विना किसी प्रकार की वाहरी सहायता के व्यक्त करते हैं।

अब यदि हम 'उद्धवशतक' को देखते हैं तो ज्ञात होता है कि इसमें एक प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य दोनों का सुन्दर सामंजस्य हैं, अर्थात् इसके छंद एक सूत्र में पिरोये हुए भी हैं उनमें एक धारा प्रवाहित है और साथ ही उसका प्रत्येक छंद अपने में ही पूर्ण है। अगर स्वतंत्र रूप से छंदों को लिया जाय तो अपना अर्थ पूर्ण करने की क्षमता उनमें पाई जाती है और यदि एक प्रसंग की दृष्टि से देखा जाय तो उनमें एक कड़ी (Link) पिरोइ हुई मिलती है। यद्यपि नाटक के समान इसे दृश्य काव्य नहीं कहा जा सकता फिर भी अभिनयात्मकता प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। चित्रोपमता इतनी सुन्दर वन पड़ी है कि प्रत्येक छंद एक चित्र उपस्थित करता है मूर्तिरूप सामने उपस्थित करते हैं। इसलिये इसे चित्रकाव्य कह सकते हैं ऐसा मालूम देता हैं कि चित्रकार चित्रपट पर कुछ चित्र अंकित कर रहा है। उद्धव को विदा करते समय कुछ कहने की आशा से कृष्ण का रथ के साथ लगे जाने का चित्र निम्न छंद में किस प्रकार उपस्थित किया है देखते ही वनता है। केवल चित्र ही नहीं उपस्थित होता उसमें एक गति का प्रवाह भी मिलता है :—

आइ ब्रज पथ रथ ऊधौ कौ चढ़ाइ कान्ह
अकथ कथानि की व्यथा सौं अकुलात हैं

× × × ×

सीरे तपे विविध संदेसीन को वितना की
घातनि की झौंक में लगेई चले जात हैं।

शब्दों में इतना प्रवाह इतनी गति है कि चित्र भी गति—मान ही सामने आता है।

शब्द की अर्थ शक्तियों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि लाक्षणिकता तो इसकी घनानन्द की याद दिलाती है लेकिन अभिधा और व्यजंना का भी खुलकर उपयोग किया है। विहारी का जैसा वाग्वैदग्ध्य पिछले खेवे के किसी कवि में पाया जाता है तो वह केवल रत्नाकर जी में ही। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उद्धवशतक वह चित्रोपम काव्य है जिसमें अर्थ की तीनों शक्तियों का उचित उपयोग किया गया है जहाँ तक खंड काव्य का प्रश्न है खंड काव्य में भी प्रबन्धात्मकता आवश्यक होती है क्योंकि खंड काव्य प्रवन्ध काव्य का ही एक भाग है। क्योंकि 'उवद्धशतक' कृष्ण कथा के अंश उद्धवगोपीसंवाद का पूर्ण परिचय प्रदान करता है इसलिये वह खंड काव्य की कोटि में ही आसानी से रक्खा जा सकता है यद्यपि उसके छंद अपने में स्वतंत्र भी कहे जा सकते हैं लेकिन हमारी राय में 'उद्धवशतक' मुक्तक की अपेक्षा खंडकाव्य के अधिक समीप है क्योंकि उद्धवशतक एक कथा का अंश है और कथा कथानक प्रायः संवाद शैली में ही प्रस्तुत किया जाता है इसलिये उसमें कड़ी बराबर जुड़ी रहती है। हाँ कुछ छंद जो अलग से मालूम पड़ते हैं वे केवल वहीं पर हैं जहाँ कोई पात्र या पात्रवर्ग अकेला रह जाता है और उस समय उस पात्र या पात्रवर्ग की मनोदशा और उसके अनुभवों का चित्रण करना कवि का अभीष्ट है अथवा कथा सूत्र को वढ़ाने के लिये कवि किसी अकेले पात्र या पात्रवर्ग को असमर्थ पाकर अपनी ओर से कुछ कहने लगता है और वह ठीक उसी प्रकार है जैसे 'रामचरितमानस' में कथासूत्र का आगे वढ़ाने की दृष्टि से ऐसी पक्तियाँ पाई जाती हैं जिनका काव्य की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं। जैसे ये पंक्तियाँ :—

"आगे चले वहुरि रघुराई,
ऋष्यमूक पर्वत नियराई।"

इन पंक्तियों को काव्य दृष्टि से देखने पर कोई उत्कर्ष नहीं दिखाई देता, लेकिन ये कथासूत्र को आगे बढ़ाने में समर्थ हैं।

नायक अथवा नायिकाओं की दृष्टि से भी देखा जाय तो भी उद्धवशतक खंड काव्य के ही अधिक समीप पाया जायगा। मुक्तक काव्य में नायक या नायिका कोई और कितने ही हो सकते है। कोई व्यक्ति विशेष का होना आवश्यक नहीं। जबकि खंड काव्य में नायिक अथवा नायिका का व्यक्ति-विशेष होना आवश्यक है। इस दृष्टि से उद्धवशतक को देखने पर ज्ञात होता है कि उद्धवशतक की सारी कथा कृष्ण और गोपियों (जोकि एक प्रकार से राधा का प्रतिनिधित्व करती हैं) के चारों ओर लिपटी हुई है। गोपियों को भी अलग कहते नहीं पाया जाता। जहाँ कहीं भी उन्होंने कुछ कहा है सामूहिक रूप में—— एक कम्पनी बना कर। इसलिये इस दृष्टि से भी उद्धवशतक खंड-काव्य ही ठहरता है।

अब कुछ रसकी दृष्टि से भी देखें तो हम कहेंगे कि सारा काव्य विप्रलंभ-शृँगार प्रधान है जिसमें करुणा और भक्ति रस भी उसके सहायक रूप में उपस्थित हुए हैं। कृष्ण और गोपियाँ आलम्बन रूप में और कमल पुष्प का पाना, जमुना की एकान्तता उद्दीपन विभाव में कृष्ण पक्ष में तथा पत्रिका आदि गोपियों के रूप में उद्दीपन के रूप में है। स्मृति संचारी ने इसके उत्कर्ष को और भी बढ़ा दिया है। यद्यपि विप्रलंभ शृँगार की दश-दशाओं का समावेश 'उद्धवशतक' में पूर्णरूपेण नहीं हुआ फिर भी इसकी निष्पत्ति में कोई कमी नहीं आ पाई। मुक्तक काव्य में रस की ऐसी प्रक्रिया नहीं पाई जाती जैसी खंडकाव्य अथवा प्रबंधकाव्य में। मुक्तक काव्य में कोई प्रधान रस खोजना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य पड़ जाता है।

रचना शैली की दृष्टि से भी उद्धवशतक को खंड काव्य कहा जा सकता है। सारा काव्य कवित्त छंद में जिसमें तीन प्रकार के

छंद—मनहरण जलहरण और घनाक्षरी का समावेश है पाये जाते हैं। भाषा सारे काव्य की माधुर्यपूर्ण होने पर भी ओज और प्रसाद गुण लिये हुये है। अनुप्रास प्रियता सर्वत्र ही पाइ जाती है। संगीत का स्त्रोत सभी छंदों में प्रवाहित हो रहा है। वाक्य विन्यास एवं शब्द चयन में भी कहीं शिथिलता नहीं। भाषा सर्वत्र भावानुकूल परिमार्जित मुहावुरेदार तथा शब्द मैत्री युक्त है। यहाँ पर एक बात कहने को और रह गई। मुक्तक काव्य में मंगलाचरण की आवश्यकता नहीं हुआ करती। किन्तु उद्धवशतक की रचना मंगला चरण से ही हुई है क्योंकि इसमें प्रबंध तत्व उपस्थित है इसीलिये मंगलाचरण को आवश्यकता कवि को प्रतीत हुई। इस प्रकार सभी दृष्टिओं से देखने पर 'उद्धवशतक' हमारी राय में खंडकाव्य के ही अधिक समीप पड़ता है वैसे यदा-कदा उसमें मुक्तक के गुण भी पाये जाते हैं। परन्तु क्योंकि कविता कभी भी पूर्णतयाः किसी घेरे में नहीं बांधी जासकती इसीलिये ये मुक्तक के गुण उसके खंड काव्य होने में कोई बाधा उपस्थित नहीं करते।

अब हम खंडकाव्य की दृष्टि से इसके नायिक एवं नायिकाओं की कीं विवेचना करेंगे। खंड काव्य और मुक्तककाव्य में रस निर्वाह का अन्तर तो पड़ ही जाता है। लेकिन कभी २ खंड काव्य और मुक्तक काव्य की दृष्टि नायिक-नायिका का भेद भी उपस्थित होता है। (मुक्तक काव्य के नायक नायिका का भेद भी उपस्थित होगा है काव्य के नहीं। उद्धवशतक को दृष्टिगत करने पर हम देखते हैं कि यह विप्रलंभ शृंगार कला काव्य रूप है कृष्ण और गोपियाँ भिन्न-भिन्न स्थानों पर इसके आलंबन रूप हैं और इसी हिसाब से विप्रलंभ शृंगार की अन्य सामग्री उसमें पाई जाती है। कृष्ण राधा के विरह में एक साथ व्याकुल दिखाई देते हैं कमल का अर्ध-मूर्छित पुष्प उद्दीपन विभाव का काम करता है और स्मृति संचारी द्वारा पुष्ट होकर उन्हें पूर्ण विरह दशा आ घेरती है और सात्विक भावों का

उदय होता है। कृष्ण से कथा का प्रारम्भ होकर अंत भी कृष्ण को उद्धव संदेश देते हुये करते हैं उद्धव जो कुछ कहते हैं वह कृष्ण से संबंध रखते हुये ही। वह उनके संदेश वाहक के रूप में प्रयुक्त हुये हैं इसलिये यह स्पष्ट ही है कि 'उद्धवशतक' के नायक कृष्ण ही हैं।

अब रही नायिका निर्णय की बात। नायक निर्णय करना तो सीधे सिद्धान्त पर ढूँढ़ लिया गया और इस पर मेरी राय में दो मत नहीं हो सकते लेकिन नायिक निर्णय के प्रश्नोत्तर में कुछ भ्रम रत्नाकर द्वारा गोपियों में राधा को उपस्थित न करने के कारण फैल सकता है राधा को ऊधव की विदा के समय ही उपस्थित किया है। अब देखना यह है कि इस काव्य की नायिका राधा ठहरती हैं अथवा गोपियाँ। कृष्ण को यमुना में बहे कमल की सुगंध द्वारा राधा की स्मृति होती है और फिर संबंध भावना के कारण स्मृति संचारी द्वारा प्रायः गोप-गोपी सभी का विरह सताने लगता है लेकिन प्रधानता राधा की है। उद्धव द्वारा राधा को संदेश न देने एक कारण है। जो उद्धव ब्रज में पहुँचते ही जड़ों की दशा देखकर ही हक्के बक्के रह गये न तो उनमें ही इतनी शक्ति थी कि राधा को कुछ संदेश दे सकते और न राधा में ही इतनी क्षमता थी कि उनका योगोपदेश सुन सकती। कवि का हृदय यह जानता था इसीलिये उसने राधा को और नंद यशोदा को संवाद से दूर ही रक्खा है वे केवल उद्धव विदा के समय उपहार भेंट करने ही आसके हैं।

अब एक चीज और देखनी है कि गोपी जो कुछ कहती हैं वे व्यक्तिगत रूप से या व्यक्तिगत स्वार्थ लिये अथवा उनपर राधा की छाया भी आच्छन्न हैं। कहना न होगा कि गोपियों ने व्यक्तिगत में कुछ नहीं कहा। वे सामूहिक रूप मे ही सब कुछ कहती रहीं और वह भी राधा के प्रतिनिध के रूप में ही। अगर यह कहें कि कृष्ण ने भी गोपियों के प्रति प्रेम प्रकट किया है और उनकी भी याद उनको व्यग्र करती है तो वह केवल राधा की संबंध भावना से। और अगर किसी को गोपियों को भी नायिकाओं के रूप में सिद्ध

करने का रोग हो तो, गोपियों को विरहोत्कंठित परकीया नायिकाओं के रूप में ही रख सकते हैं। वैसे इस व्याख्या की नायिका राधा ही ठहरती है चाहे कोई इसे खंडकाव्य माने अथवा मुक्तक काव्य। इतना ही कहकर हम समाप्त करते हैं।

प्रश्न ७—"एक पथ विशेष पर परिश्रम पूर्वक चलते चलते 'रत्नाकर' जी साहित्य में अपनी एक अलग लीक बना गये हैं।" इस कथन पर उद्धवशतक में से उदाहरण देते हुये अपने विचार प्रकट कीजिये।

हल—किसी काल के बहुत से कवियों या लेखकों की कृतियों के साधारण अध्ययन से भी हमें इस बात का पता लग जाता है कि कुछ ऐसी बातें हैं जो उन सब की कृतियों में एकसी पाई जाती हैं, चाहे अनेक बातों में विभिन्नता ही क्यों न हो। उनके अध्ययन से ऐसा प्रकट होता है कि विभिन्न होने पर भी उनमें कुछ समता है। जब हम तुलसीदास जी के ग्रन्थों पर विचार करते हैं, तब हमारा मन हठात् सूरदास, केशवदास, ब्रजवासीदास आदि के ग्रन्थों पर चला जाता है, तब हम इन सबकी तुलनात्मक जाँच करने और इनकी समता या विभिन्नता का ज्ञान प्राप्त करने में लग जाते हैं। यह संभव है, और कभी-कभी देखने में भी आता है कि एक ही वंश या माता पिता की संतति में जहाँ प्रायः कुछ बातें समान होती हैं; वहाँ कोई ऐसी भी संतति भी जन्म लेती है जिसमें सबके जैसा एक भी गुण नहीं होता उनमें सभी बातों में औरों से भिन्नता पाई जाती है। यही बात हमें आधुनिक काल के ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि 'रत्नाकर' जी में पाई जाती है।

'रत्नाकर' जी का आविर्भाव यद्यपि आधुनिक काल में हुआ था, परन्तु वे तो मध्ययुग की मनोवृत्ति लेकर मध्ययुग के ही वातावरण में निवास करते थे। आधुनिकता का उन पर प्रचुर प्रभाव नहीं पाया जाता। मध्यकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण काल कहा गया है, और 'रत्नाकर' जी की रुचि उधर ही थी। उनके भाव, उनकी भाषा तथा वर्ण विषय सब उसी काल के थे। और तो और

वे रहते भी मध्यकालीन मुद्रा ही में थे। श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी जी ने ठीक ही कहा है "रत्नाकर में व्यक्तिवाद नहीं था, उन्होंने वही कहा था जो भक्त कवि कह आये थे। अधुनिकता के प्रति उनके जीवन में कोई रुचि नहीं थी। वे किसी सीमा तक पूरे क्लासिक कवि थे..........उनमें पौराणिकता व रुढ़िवद्धता रहती है।"

आधुनिक काल की पुरानी धारा के जितने भी अन्य कवि-सेवक, सरदार, रीवाँ नरेश, भारतेंदु, प्रेमघन, श्रीधर पाठक, सत्यनरायण कविरत्न आदि हुये, वे सभी प्राचीन परंपरा के अक्षरशः अनुकरण करने वाले थे। इनके आदर्श रीतिकार थे। कुछ कवि भक्त भी थे, कुछ को छोड़ कर प्रायः सभी ने खड़ी बोली को ही प्रधानता दी। सत्यनारयण यद्यपि उच्चकोटि के भावुक एवं गायक थे लेकिन जो तल्लीनता जो संगीत स्त्रोत 'उद्धवशतक' में पाया जाता है वह उनमें नहीं ; क्योंकि उनका इतना अध्ययन नहीं था, और न उनमें इतनी कला कुशलता ही थी। उद्धवशतक की संगीतात्मक द्रष्टव्य है! एक उदाहरण देखिये :—

भेजे मन भावन के ऊधो के आवन की
सुधि वृज-गाँवन में पावन जबै लगी।
ग्वालिन की झौरि झौरि दौरि दौरि
नंद पौरि आवन तबै लगी।

'भावन, आवन गाँवन आदि शब्दों में कितनी संगीतात्मकता हैं।

लेकिन संगीतात्मकता ही वह चीज नहीं जो उन्हें अन्य कवियों से अलग उठा कर बैठती है। यह उनके स्वभाव और संस्कार की वात थी। कवि स्वभाव से वहुत ही विनोदी और चपल था औरों संस्कारों से भक्त। भक्ति भी उसे वल्लभ सम्प्रदाय की मिली थी जो उसके स्वभाव के अनुकूल की थी। कवि ने 'उद्धवशतक' के लिये एक ओर तो जहाँ रीतिकालीन कलेवर अपनाया वहाँ आत्मभक्तों से माँगने पहुँचे। रीति और भक्ति का ऐसा सुन्दर सामजंस्य 'उद्धव-शतक' में हुआ है कि देखते ही वनता है। कवि ने आत्म विभोर

होकर कृष्ण कथा कही और चैतन्य रह कर कला का अनुसरण किया। यही दोनों प्रवृत्तियाँ रत्नाकर का एक अलग मार्ग बनाती दिखाती हैं।

रत्नाकर रीतिकालीन कवि पद्माकर, घनानन्द, देव, विहारी आदि को आदर्श मानकर चले और प्रधानता पद्माकर को ही दी। शब्द योजना, अलंकर प्रयोग, लाक्षणिक वैचित्र्य, चमत्कार-प्रदर्शन, भाषासौष्ठव, अनुप्रास प्रियता आदि के लिये तो कवि ने रीतिकाल को लिया, किन्तु इसबाह्य कला के पीछे एक भक्त की आत्म-विह्वलता छिपी रही। इसलिये उद्धव-शतक में मार्मिकता एवं प्रभु-विष्णुता दोनों साथ रहीं। यह अभाव सरलता के साथ अन्य कवियों में पाया जासकता है। सेवक मर्मज्ञ कवि थे, परन्तु चमत्कार प्रिय अधिक, सत्यनारायण कविरत्न भावुक तो थे पर अध्ययन कम होने के कारण कला का निखार नहीं ला पाये। भारतेंदु में प्रतिभा तो असीम थी लेकिन वह साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में वितरित होगई।

नास्तिकता और नग्नता के युग में भी रत्नाकर जी आशा और विश्वास के साथ पुरानी तानें छेड़ते रहे और भूली हुई मनोवृत्ति को सजग बनाते रहे। आधुनिक युग में भी पुरातन ब्रज जीवनकी झाँकी कराने का श्रेय रत्नाकर को ही अधिक है। इस युग में जब ईश्वर कोई वस्तु ही नहीं माना जाता, रत्नाकर जी ने उद्धवशतक की रचना निम्नांकित मङ्गलाचरण के छन्द द्वारा प्रारम्भ की :--

जासौं जात विषय-विषाद की विवाई वेगि
चोप-चिकनाई चित चारु गहिबो करै।

× × × +

जयति जसोमति के लाड़िले गुपाल, जन
रावरी कृपासौं सो सनेह लहिबो करै।

मंगलाचरण भी कितना अनुकूल है। स्तवन कृष्ण का ही किया है करते भी क्यों नहीं, आखिर तो भक्त थे। और भक्ति भी

उनकी माधुर्य भाव की थी। उद्धवशतक में हमें एक सच्चे भक्त के दर्शन होते है। गोपिकायें हमारे सामने अपने प्रियतम के प्रवासी होजाने पर वियोगिनी के रूप में आती हैं। आरम्भ में ही श्रीकृष्ण के दर्शन 'विरह व्यथा' से व्यथित के रूप में होते हैं वे आवश्यक कार्य से मथुरा तो आगये हैं लेकिन उद्धव से कहते हैं कि ब्रज की स्मृति वहाँ के स्नेह युक्त प्राणी मुझे बुलाते हैं—

नन्द औ जसोमति के प्रेम भरे पालन की

× × × ×

सुधि ब्रजवासिन दिवैया सुख वासिन की,
ऊधौ नित हमको बुलावन को आवती।

उनके नैत्रों में ब्रज के वे कुन्ज फिरते है जिनमें वे किसी समय घूमा करते थे—

फिरत हुते जू जिन कुन्जन में आठौ याम
नैननि में अब सोई कुंज फिरयो करैं।

इधर तो कृष्ण का भी यह हाल है ऊधर गोपियाँ भी एक अनन्य भक्त की तरह अपना सब कुछ कृष्ण पर वार चुकी हैं। वारबार वे उद्धव से कहती हैं।

(१) वे तो हैं हमारे ही, हमारे ही, हमारे ही,
हम उनही की, उनही की, उनही की हैं।
(२) चेरी नाहिं ऊधो काहू ब्रह्म के बबा की हम,
सीधे कहे देत एक कान्ह की कमेरी हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'उद्धवशतक' का भाव पक्ष आधुनिक-काल के विपरीत भक्तिकालीन एवं तत्कालीन कवियों से भिन्न था तथा कला की दृष्टि से जैसा ऊपर दिखा चुके हैं उद्धवशतक एक वार फिर हमें रीतिकाल की झाँकी कराता है। वही चमत्कार वही अनुप्रास प्रियता, वही ब्रजभाषा का शुद्ध एवं स्थिर रूप तथा वही अलंकार विधान जो रीतिकाल की विशेषता है हमें 'उद्धवशतक' में मिलते हैं। किन्तु अन्य कवियों की तरह उन्हों ने चमत्कार

प्रदर्शन के लिये रीतिकालीन को ज्यों का त्यों नहीं अपनाया। उसमें भी उन्होंने अपना एक अलग रास्ता खोज निकाला। रीतिकाल में छंदों का निर्माण प्रायः अलंकारों के लक्षण तथा उदाहरण प्रस्तुत करने के लिये होता था लेकिन यह चीज हमें उद्धवशतक में नहीं मिलती।

शैली भी रत्नाकर जी की वही पुरानी रीतिकालीन तत्व लेते हुये कहीं। ब्रजभाषा को जो रूप आचार्य केशव द्वारा दिया जा कर विहारी आदि द्वारा आगे चढ़ाया गया उसे रत्नाकर जी ने पूर्णतया स्थिर कर दिया।

छंद विधान भी आधुनिक छंदों से भिन्न-रीतिकालीन ही रही। एक ओर जहाँ अन्य आधुनिक कवि आधुनिकता के ढाँचे में ढले जा रहे थे—जहाँ उनको देश दुर्दशा अँग्रेजो के अत्याचार, सुधारवाद, अतीत गौरव की याद आ रही थी वहाँ रीतिकाल में भूषण की तरह रत्नाकर जी पुरानी तानें छेड़ रहे थे। ब्रजभाषा की सुधा से एक बार फिर मुर्झाये मनों को हरा करने में प्रयत्न तो थे। यद्यपि खड़ी बोली का आंदोलन एवं प्रचार जोर पर था परन्तु रत्नाकर जी तो एक दूसरी ही दुनियाँ में रहते थे। शुद्ध बुर्ज भाषा का एक उदाहरण उद्धवशतक से देखिये:—

भेजे नन भावन के ऊधो के आवन की
सुधि उन गाँवन में पावन जवै लगी
ग्वालनि की झौरि झौरि दौरि नंद पौरि आवन तवैं लगीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'रत्नाकर जी' बड़े परिश्रम पूर्वक एक अपना अलग रास्ता अपना कर चले थे। वे मध्यकालीन कवि थे व्यक्तिवाद का दोष हम उनमें नहीं ढूँढ़ सकते। यह उनका स्वाभाव था।

प्रश्न ६—'ब्रजभाषा को साहित्योचित एकरूपता देने का जो कार्य आचार्य केशव के द्वारा उठाया जाकर तथा महाकवि विहारी लाल के द्वारा आगे बढ़ाया जाकर कविवर घनानंद के द्वारा प्रौढ़ किया गया था वही अब

रत्नाकर जी के द्वारा पूर्ण किया गया है।" उक्त कथन के प्रकाश में रत्नाकर जी की भाषा की समीक्षा, उद्धवशतक से आवश्यक उदाहरण देकर कीजिए।

हलः—रत्नाकर जी ब्रजभाषा के परमप्रेमी, विद्वान एवं आचार्य थे। उन्होंने जितनी भी रचनायें की उन सभी में ब्रजभाषा का माधुर्य उड़ेल दिया। ब्रजभाषा का उन्होंने गहन अध्ययन किया था और इसके लिये उन्होंने ब्रज में रहकर ब्रजभाषा साहित्य का आद्योपान्त अध्ययन किया था। ब्रजभाषा को अपने पूर्ण साहित्यिक रूप में स्थिर करने का कौशल आधुनिक, काल में किसी को प्राप्त है तो वह रत्नाकर को ही। कहने की आवश्यकता नहीं कि उद्धवशतक की भाषा भी शुद्ध ब्रजभाषा है। हिन्दी के क्षेत्र में अपनी प्रधानता रखने वाली ब्रजभाषा को ऐसे समय में जबकि चारों ओर खड़ी बोली का बोलबाला था, अपने उत्कृष्ट रूप में, रत्नाकर जी ने बिना किसी की चिंता किये, उपस्थित किया। जैसा पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी ने कहा है, ब्रजभाषा में उन जैसा भाषा मर्मज्ञ इधर बहुत दिनों से नहीं हुआ।' इसका कारण जैसा ऊपर कहा गया है उनका ब्रजभाषा का गहन अध्ययन था उनकी ऐसी मजी हुई ब्रजभाषा का स्वरूप अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। वे उन कवियों में से थे जो ब्रजभाषा की गहराई में पैठकर उसकी थाह ले चुके थे।

जैसा कि स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है, चलती ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्यिक कृति सूरदास की है। यद्यपि सूरदास जी की भाषा भी प्रगल्भ, काव्यांगपूर्ण एवं साहित्यिक है, फिर भी उसमें पूर्ण साहित्यिकता नहीं मिलती और न उसमें पूर्ण स्थिरिता ही है। वह ग्रामीण ब्रजभाषा के पुराने शब्दों एवं काव्य भाषा अपभ्रंश के शब्दों को लिये हुये हैं। रत्नाकर जी ने भी कहा है कि ब्रजवाणी ने प्रारंभिक कवियों को मधुर रस भरी कविता लिखने की चेतना अवश्य थी किन्तु वे साहित्यिक नियम निर्धारण के फेर में नहीं पड़े। क्योंकि वे कवि होने से पहले भक्त थे

वे अपनी भक्ति में मस्त रहते थे और उस मस्ती में ही काव्य स्रोत फूट निकलता था। और स्वाभावतः ही जो भाषा प्रचलित थी उसी में काव्य रचना होती जाती थी, उन्हें भाषा इत्यादि का कोई ध्यान नहीं था इस बात की व्याख्या करते हुए रत्नाकर जी लिखते हैं—"सूरदास जी के समय में साहित्यिक ब्रजभाषा प्रारंम्भिक अवस्था में थी अतः स्वभावता ही उनके पदों के रूप अव्यवस्थित थे और उनके प्रयोगों में वैषम्य दिखलाई देता था जो लोग संस्कृत तथा व्याकरण के सिद्धान्तों के जानकार थे, उनकी आँखों में उसकी अव्यवस्थित स्थिति खटकने लगी थी और वे अपनी कविता में यथा शक्ति भाषा सुधार करने लगे। जो जितने ही विचारशील होते थे, वे अपनी कविता में भाषा का प्रयोग उतना ही संभाल कर करते थे पर उनके इस सुधार का पूरा लाभ सब लोगों को नहीं पहुँचता था क्योंकि यद्यपि वे अपनी कविता में तो भाषा का कुछ सुधार अपने विचारों के अनुसार कर लेते थे, पर अपने सिद्धान्तों को किसी पुस्तक द्वारा प्रकाशित करने का श्रम नहीं उठाते थे। सामान्य कवि यद्यपि उनकी परिमार्जित भाषा से कुछ न कुछ प्रभावित तो अवश्य होते थे, पर सिद्धान्तों का स्पष्ट ज्ञान के अभाव में भाषा सुधार की आवश्यकता तथा ढंग नहीं समझ सकते थे। प्रत्येक विचारवान कवि को अपने निमित्त स्वयं अनुशील तथा अन्वेषण करना पड़ता—था, और भाषा सुधार की उन्नति यथेष्ठ वेग से नहीं हो सकती थी इतना ही नहीं, प्रत्युत अपने सिद्धान्तों को स्पष्ट रूप से निर्धारित करके लेख में स्थापित न करने के कारण उनमें कुछ ऐसा धुंधला-पन बना रहता था कि स्वयं निर्धारित करने वालों की दृष्टि भी कभी-कभी चूक जाती थी. और वे भी कहीं-कहीं इनके निर्वाह पर ध्यान नहीं दे सकते थे।"— कोशोत्सवस्मारक संग्रह पृ० ३८८,३८९।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर के समकालीन कवियों की भाषा में यद्यपि लालित्य, गेयता एवं मधुरता भरी थी किन्तु उसमें स्थिरिता नहीं थी। मध्यकालीन कवियों में केशवदास जी संस्कृत के बहुत बड़े

पंडित थे और संस्कृत भाषा की शुद्धता काव्य का आवश्यक गुण ठहराया गया है। ऐसी दशा में यह आवश्यक ही था कि संस्कृत के आचार्य का ध्यान भाषा की विशृंखलता की ओर जाता। इसी कारण हमें केशवदास जी की भाषा में हमें शुद्धता, सुघरता एवं सामंजस्य मिलता है। फिर भी उनका लक्ष भाषा परिमार्जन न होने के कारण भाषा में स्थिरिता नहीं आ सकी। जो कुछ शुद्धता अथवा साम्यता आई थी वह तो उनके अनजाने ही उनके स्तर के कारण से ही आसकी थी। हाँ केशव के समसामयिक तथा अनेक परवर्ती कवियों का ध्यान साहित्यिक भाषा की विषमता एवं जर्जरता की ओर गया था किन्तु चमत्कार प्रियता एवं रचना पूर्ति के प्रलोभन के कारण वे भी भाषा का शुद्ध रूप सामने न ला सके। उनकी रचनाओं में एक ही वस्तु के लिये भिन्न २ शब्दों का प्रयोग एवं व्याकरण की दृष्टि से विशेष त्रुटियाँ पाई जाती हैं। भाषा को इन दोषों से बचाकर, उसके रूप को कुछ स्थिरिता प्रदान करने का श्रेयस्कर कार्य महाकवि बिहारी लाल ने किया। जिस प्रकार खड़ी बोली का संस्कार भारतेन्दु बाबू द्वारा किया गया है उसी प्रकार ब्रजभाषा का बहुत कुछ संस्कार कवि वर बिहारीलाल ने अपनी शब्द निर्माण शक्ति एवं भाषा की मर्मज्ञता के द्वारा किया। यह कार्य बिहारी बड़ी कठिनाई से कर पाये होंगे। उन्होंने अपने लिये एक व्याकरण का ढाँचा अवश्य ही बना लिया होगा। बिहारी जैसी गठी हुई भाषा उनके पूर्ववर्ती किसी कवि में नहीं पाई जाती है।

बिहारी के पश्चात् भाषा संस्कार का कार्य घनानंद एवं पद्माकर के हाथों में पड़ा। घनानंद की भाषा अर्थ की शक्तियों से युक्त एवं यथाशक्ति बिहारी लाल से भी अधिक परिमर्जित है। विशेषताओं पर घनानंद की सी लाक्षणिकता नो मिलना कठिन ही है लेकिन घनानंद की शब्द चयन शक्ति उतनी बढ़ी हुई एवं यथेष्ठ नहीं थी जितनी बिहारी में पाई जाती है और बाद में जिसे रत्नाकर जी ने अपनाया।

बिहारी की भाषा का वाग्वैदग्ध्य एवं गठन तो रत्नाकर जी की भाषा में पाया ही जाता है साथ ही पिंगलशास्त्र की दृष्टि से भी भाषा अधिक परिमार्जित बन-पड़ी है। उसमें प्रसाद, ओज माधुर्य, व्यंजना शक्ति, लालित्य आदि सभी यथेष्ट मात्रा में पाये जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि ब्रजभाषा के रूप को स्थिरिता प्रदान करने की क्रियात्मक जाग्रति रत्नाकर में ही देखने को मिलती है। मध्यकालीन-ब्रजभाषा के साहित्यिक-स्वरूप में शब्द रूपों की जो अस्थिरिता दी—जैसे राम और श्याम के लिये रामु, श्यामु, कहीं चलै के लिये चलैई आदि के प्रयोग प्रायः निर्वाह के लिये किये जाते थे, उनमें अब स्थिरिता आगई, 'उद्धवशतक' में कहीं भी भाषा की ऐसी शिथिलता, व्याकरण दोष एवं विछलन नहीं पाई जाती। उसकी भाषा बड़ी सधी हुई है, प्रत्येक शब्द की सत्ता अनिवार्य है एवं वह पूर्ण संतुलित Well balanced है। यही कारण है कि रत्नाकर जी को भावाभिव्यक्ति में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। भावों की गंभीरता एवं अनुभूति के साथ भाषा सौष्ठव काव्य-श्री को दुगुना कर देता है। शब्दों की खोज करने में या उन्हें तुक निर्वाहि के लिये तोड़ने मरोड़ने में उन्होंने अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं किया है यद्यपि कवि होने के नाते अपने अधिकार का भी उन्होंने यथासंभव उपयोग किया है। भाषा में परिमार्जित मुहावरों का प्रयोग करके तो भाषा को चार चाँद ही लगा दिये हैं। देखिये—

चलत न चारौ भाँति कोटिन विचारौ तऊ
दाबि दाबि हार्यौ पै न टार्यौ टसकंत है।

× × × ×

ऊधौ ब्रज-वास के विलासनि कौ ध्यान धँर्यौ
निसदिन काँटे लौं करेजो कसकंत है।

चलत न चारौ (चारा न चलना) 'काँटे लौं कसकना' आदि मुहावरों का प्रयोग भाषा की सजीवता को और भी बढ़ा देता है। इसी प्रकार अन्य छंदों में 'प्रत्यक्ष किम् प्रमाण', दिनों का फेर आदि अनेक मुहावरों का प्रयोग उद्धव शतक में पाया जाता है।

फिर भी इसकी भाषा व्याकरणानुमोदित नियमनियंत्रित, लौकिक प्रयोगानुकूल एवं सुव्यवस्थित है। कहीं भी ग्रामीण एवं अश्लील शब्दों को लाकर नहीं रखा गया। जहाँ परिहास है वहाँ भी बड़ी संयत एवं शिष्ट भाषा का प्रयोग किया गया है। वाक्य विन्यास एवं शब्द चयन बड़ा ही सुगठित एवं अपने में पूर्ण है।

रत्नाकर जी की भाषा में संगीतात्मकता तो कूट कूट कर भरी हुई है। अनुप्रासों की छटा, शब्द मैत्री एवं वर्ण मैत्री संगीत लहरी को और ही हृदय-हारिणी बना देती है। एक उदाहरण देखिये—

भेजे मनभावन के ऊधो के आवन की
सुधि ब्रज गाँवन में पावन जबै लगी,
कहै रत्नाकर ग्वालिन की झौरि झौरि
दौरि-दौरि नंद पौरि आवन तबै लगी।
उझकि उझकि पंद कंजनि के पंजनि पै
पेखि पेखि पाती छाती छोहनि छवै लगी,
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ कहा,
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं।

कितनी संगीतात्मकता, कितनी लय है इस छंद में। कि पाठक गुनगुनाने लगता है।

रत्नाकर जी की भाषा की विशेषता जिससे 'उद्धव-शतक' भरा पड़ा है वह है सजीव चित्रोपमता। उद्धव शतक की पदावली में समूर्त पदों का सुचारु संगुफन किया गया है और वाक्य विन्यास भी इसी प्रकार का रक्खा गया है कि उसमें वर्णित वस्तु को सामने चित्रित करके सजीव खड़ा करने की पूरी क्षमता आ गई है। उद्धव मथुरा को लौटकर आ रहे हैं उनके एक हाथ में मक्खन की मटकी है और एक हाथ में राधा की भेजी हुई बाँसुरी। प्रेममद में छके हुये उद्धव अपने को सँभाल नहीं सकते और रोने लगते हैं। दोनों हाथ घिरे होने के कारण वह कुरते की बाँह से ही आँसू पोंछने लगते हैं देखिये :—

प्रेममद छाके पग परत कहाँ के कहाँ
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै रत्नाकर यौं आवत चकात ऊधौ
मानौ सुधियात कोऊ भावना भुलाई है।
धारत धरायै ना उदार अति आदर सौं
सारत वहोलिसि जो आँस-अधिकाई है।
एक कर राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ
एक कर वंशी वर राधिकौ पठाई है।

छंद को पढ़ते ही एक हाथ में मक्खन की मटकी और एक में वंशी लिये आखों से आसूँ पोंछते, लड़खड़ाते हुये उद्धव आँखों में उपस्थित हो जाते हैं। इस प्रकार सर्वत्र ही भाषा में सजीवता एवं साकारता की शालिमा मिलती है। प्रत्येक शब्द एक विशेष भाव लिये हुये, सबल और सार्थक है। भावों और भाषा में सर्वत्र होड़ सा लगी हुई मिलती है। जहाँ दार्शनिक विवेचन है वहाँ भाषा गंभीर और जहाँ परिहास एवं व्यंग की योजना है वहाँ वक्रोक्ति युक्त है।

काव्य भाषा की शास्त्रीय कसौटी की दृष्टि से जैसाकि हम ऊपर बताए आये हैं भाषा के वे सभी गुण अथवा लक्षण विद्यमान हैं जिनका होना आचार्यों ने आवश्यक ठहराया है। आपका माधुर्य एवं ओज यथा शक्ति आवश्यकता अनुसार शोभित हैं। विप्रलंभ शृंगार का काव्य होने के कारण वृत्तियाँ भी उपनागरिका एवं कोमल हैं तथा वैदी भी और पाचांली रीतियों को प्रधानता दी गई है। यह कहना कि "रत्नाकर जी की सुगठित भाषा में ओज है माधुर्य नहीं, उनकी भाषा का यह ओज प्रेम संबंधी रचनाओं में रस की कोमलता का बोध नहीं होने देता।" रत्नाकर जी के प्रति अन्याय करना होगा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को छोड़ कर व्रजभाषा के और किसी उपासक को इस आधुनिक युग रत्नाकर के अतिरिक्त वह प्रतिभा कदाचित ही मिली हो। जैसा कि रत्नाकर जी ने स्वयं

कहा है आरंभ की रचनाओं में ब्रज भाषा का निखरा रूप भले ही न हो लेकिन प्रौढ़ कृतियों में और विशेषतः उद्धव शतक में रत्नाकर जी का भाषा पाण्डित्य प्रखर रूप में प्रस्फुटित हुआ है। संस्कृति की पदावली को इतने अधिकार के साथ कहीं २ तो ब्रजभाषा में गूँथ दिया है कि जोड़ पाना ही कठिन है।

रत्नाकर जी पिंगल शास्त्री भी थे। उन्होंने 'सूरसागर' का संपादन करते हुए पद प्रयोगों और विशेषतः विभक्ति चिन्हों के संबंध में जो नियम बनाये थे वे उनके ब्रजभाषा आधिपत्य के स्पष्टतय सूचक हैं। भाषा पर अनुशासन करने का अधिकार एक वैयाकरण को ही हो सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रत्नाकर जी भाषा में मतिराम की सी सरसता देव की मनोहारिता एवं बिहारी का सा वाग्वैदग्ध्य, घानन्द की लाक्षणिकता तथा पद्माकर की अनुप्रासप्रियता के साथ ही ब्रजभाषा की स्थिरता परिलक्षित होती है। सारांश यह है कि ब्रजभाषा की जो सरिता सूर श्रृंग से बही थी तथा जिसमें अन्य तत्कालीन बरसाती कविनदों का गदलापानी आकर मिला था और फिर जो केशव और बिहारी रूपी प्रशांत क्षेत्र में कुछ स्थिरिता पाकर स्वच्छता प्राप्त कर सकी, वह 'रत्नाकर' में आकर सदैव के लिये निर्मल होकर स्थिर होगई। हो सकता है समय आने पर उस सरिता का जल जो रत्नाकर में पहुँच कर स्थिर होगया है फिर कभी परिवर्त्तन-सूर्य की ताप से तप्त होकर भाप बनकर हिन्दी साहित्याकाश पर मँडराने लगे।

प्रश्न १०—कृष्ण काव्य मे भ्रमरगीत का संक्षिप्त विकास दिखाइये तथा प्रमुख भ्रमरगीतों से तुलना करके उद्धवशतक' का स्थान निर्धारित कीजिए।

हल—हिन्दी कृष्ण काव्य का भव्य भवन श्री मद् भागवत् की आधार शिला पर स्थित है। वहीं पर पहले पहल भ्रमरगीत का प्रसंग हमें देखने को मिलता है। श्रीमद्भागवत में यही प्रसंग एक अत्यंत मनोहारिणी कथा के रूप में आया है। श्री कृष्ण को ब्रज की स्मृति हो आने पर दुःख होता है और वे उद्धव को

व्रज इसलिये भेजते हैं कि वे वहाँ जाकर विरह में कष्ट पाते हुए माता पिता को तथा दग्ध हृदय गोपियों को सांत्वना दें और उन्हें आश्वासन भी दें कि घबराने की कोई बात नहीं, श्री कृष्ण तो आही जायँगे इस प्रकार श्री कृष्ण तो भेजते हैं उन्हें कुशलक्षेम लेने के लिये किन्तु ऊधव व्रज में जाकर कुछ भिन्न प्रकार का संदेश देते हैं जिसका सारांश यह है- कृष्ण ने कहा है, 'मैं देहधारियों की आत्मा होने के कारण सदा तुम्हारे पास ही रहता हूँ। मैं पंचतत्व इन्द्रियों और त्रिगुणी स्वरूपिनी अपनी माया के प्रभाव से अपने ही द्वारा, अपने को अपने में उत्पन्न करता, पालता तथा लीन करता हूँ। आत्मा शुद्ध है और माया से भिन्न है। जैसे सोने से उठा हुआ व्यक्ति देखे हुए मिथ्या स्वप्न का चिंतन करता है वैसे ही इन्द्रियों के विषय चिंतन से इन्द्रियों की उपलब्धि होती है इसलिये मन का दमन करना ही परम कर्त्तव्य है। तुम सब वासनाओं से शून्य होकर मन मुझ में लगाओ और मेरा निरंतर ध्यान करो, ऐसा करने से तुम शीघ्र ही मुझे पाओगी -श्रीमद्भागवत, दशम स्कंध, अ. ४७, श्लोक २७-३१ । श्री कृष्ण की ऐसी बातें सुनकर उन्हें परम संतोष और प्रसन्नता हुई। उन्हें शुद्ध ज्ञान प्राप्त हो गया तथा उनका विरहताप भी शांत हो गया। भागवत में गोपियों की ओर से उद्धव तथा श्री कृष्ण के संदेश के प्रति विरोध लेश भी नहीं जो कि हिन्दी के काव्यकारों में प्रधान स्थान पा गया है।

सूर और भक्त-कवि—संस्कृति साहित्य में तो इस प्रसंग को कोई स्थान नहीं मिला किन्तु हिन्दी काव्य संसार में सबसे पहली दृष्टि इस पर अंधे कवि सूरदास की पड़ी। उन्होंने अपनी भावनाओं को बड़ी विदग्धता के साथ हिन्दी साहित्य को अर्पित किया। इस प्रसंग को उठाकर एक ओर जहाँ उन्होंने विप्रलंभ शृंगार की सरिता प्रवाहित की एवं वृद्ध होते हुये बाल्यकाल का कौना कौना झाँक आये वहाँ दूसरी ओर बड़ी कुशलता से तत्कालीन निर्गुण सगुण के झगड़े पर भी दृष्टि डाली और निर्गुण की प्रतिक्रिया स्वरूप सगुण

का मंडन और निर्गुण का खंडन बड़े ही भावपूर्ण एवं मार्मिक ढंग से किया है। इसलिये यह कहना कि वे लोक के प्रति सोरहे थे, उनके प्रति अन्याय करना ही होगा। कबीर आदि ने जिस निर्गुण का जनता के बीच प्रचार किया, वह जनता की समझ में न आसका क्योंकि निर्गुण की ढपली का जो सुर था उसमें न तो लय थी और और न तुक। उसका अपना अलग राग था। ऐसे जो साधारण जनता की समझसे बहुत दूर था। ऐसे समय सूर ने अपनी ऐसी रससुधा बहाई जो मुरझाये मनों को हरा करने लगी जनता के मानस से सामीप्य रखने वाली मनमोहन की मोहनी मूर्ति—लोक रंजनी मूर्ति को सूर ने जनता के सामने प्रतिष्ठित किया। इसीलिये उन्होंने भक्ति का भी वही स्वरूप अपनाया जो सर्वमान्य के अनुकूल था। उन्होंने प्रेम के योग पर, भक्ति के ज्ञान पर और सगुण की निर्गुण पर महत्ता प्रति-पादित की। गोपियों की वचन भंगी के आगे ऊधव का समग्र योग और ज्ञान खंडित हो गया, वे स्वयं प्रेममयी गोपिकाओं के प्रेमरंग में रंग गये। सूरसागर में भ्रमर-गीत प्रसंग को विशद विस्तार मिला है। सूर ने तीन भ्रमर-गीत लिखे हैं। उनमें दो तो श्री मद्‌भागवत के अनुवाद ही कहे जा सकते हैं और एक मौलिकता लिये हुये हैं। कृष्ण ने उद्धव को ब्रज इसलिये भेजा कि उद्धव को अपने ज्ञान और योग का बहुत अभिमान था और वे भक्ति तथा प्रेम को कुछ नहीं समझते थे। कृष्ण जानते थे कि यह अहंकार गोपियों के व्यंग की बौछार से अवश्य ही चूर हो जायगा। संदेश भेजने का काम तो उद्धव के उद्धार के लिये बहाना मात्र था। श्रीमद् भागवत में संदेश भेजना ही अभीष्ट था किन्तु सूरसागर में उद्धव का दर्प-हरण। उद्धव गोपियों की जो बातचीत सूर ने दिखलाई है उसमें गोपियों की ओर से तर्क नहीं, भावोन्मेष है और हृदय का मुक्त प्रकाशन है।

"ऊधौ कैसे जोग अराधें" तथा "ऊधौ कोकिल कूजित कानन" ही गोपियों की सबसे बड़ी युक्ति है।

नंददास—सूर के बाद इस विषय पर भाषाकाव्य में पहला सुन्दर प्रयास अष्टछाप के दूसरे कवि नंददास जी के 'भंवरगीत' में मिलता है। उनकी कथा का स्वरूप अत्यंत संक्षिप्त किन्तु क्रमबद्ध है। कथा का आरंभ ही उद्धव के ब्रज आगमन पर होता है। उद्धव कहते हैं कि गोपियों तुम हमारा उपदेश सुनो।

ऊधौ को उपदेश सुनो ब्रजनागरी
रूप सकल गुण खानि सबै गुण आगरी।

मेरा उपदेश ही श्याम का संदेश है जिसे सुनाकर मैं मथुरा लौट जाना चाहता हूँ। श्याम का नाम सुनते ही प्रेम विह्वल गोपिकाओं ने उद्धव का बड़ा आदर किया—

अर्धासन बैठारि, बहुरि परिक्रमा दीनी,
श्याम सखा निज जानि, बहुरि सेवा बहु कीन्हीं।

कुशलक्षेम हुई। ऊधव जी प्रेमातुर गोपियों को समझाते हुए बोले—मैं तुम्हारा कुशल समाचार लेने के लिये तुम तक आया हूँ। अधीर मत हो, श्री कृष्ण थोड़े ही दिनों में मिल जायँगे। वे तुमसे दूर नहीं हैं, ज्ञान की आँखों से देखो, समस्त चराचर जगत में एक ही ब्रह्म की सत्ता है, यह सुनते ही गोपियाँ रोषपूर्ण कंठ से उद्धव की ज्ञान की बातों का तर्कपूर्ण प्रतिवाद करने लगीं। वे सचेत और व्यंगमयी होकर कृष्ण और कुब्जा को लेकर कितनी ही खरी खोटी सुनाती हैं। उनके जन्म जन्मांतर के दोष सुनाए चलती हैं। इसी बीच एक भौंरा कहीं से उड़ता उड़ता आता है और गोपियों के चरणों को कमल जानकर उस पर बैठने लगता है। अब सब गोपियाँ उसी को लक्ष्य करके ऊधव को भला बुरा कहने लगती हैं और इस प्रकार कहते कहते—

ता पाछे इकबार ही रुदित, सकल ब्रजनारी,
हा ! करुनामय ! हा नाथ ! केसव, कृष्ण, मुरारि ।
फाटि हियरो चल्यौ ॥

गोपियों के इस प्रेम प्रवाह में ऊधव बह चले । अंत में यही सब सोचते हुए वे मथुरा पहुँचे और भगवान कृष्ण से कहने लगे कि ब्रज जाकर मैं तुम्हारे रूप की निर्दयता को समझ सका ।

प्रेममयी गोपियों का समाचार सुन श्री कृष्ण के प्रेमाश्रु छलक आये । और उन्होंने ऊधव को अपना गोपीमय स्वरूप समझाया । इस प्रकार हम देखते हैं कि नंददास जी के भंवरगीत में गोपियाँ तर्कमयी और भावमयी दोनों हैं । अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी इस विषय को स्फुट रूप में उठाया है किन्तु उनमें कोई विशेषता नहीं है ।

तुलसीदास—तुलसीदास की "कृष्ण गीतावली" में भी भ्रमर गीत का प्रसंग आया है । गोपियों का विरह वर्णन कर चुकने पर उन्होंने गोपियों की उद्धव के प्रति कही गई कुछ उक्तियों को पद्यबद्ध मात्र किया है । मधुकर, मधुप आदि को संबोधित करके भी एक उन्होंने बहुत कुछ कहा है । बस इसी आधार पर उनका भी एक छोटा सा भ्रमरगीत बनगया है । लेकिन भ्रमर का यथा स्थान समावेश भी उन्होंने नहीं कराया है जैसा सूर और नंद में है । तुलसी की गोपियाँ अधिक उदार हैं वे उद्धव को बड़े उदार ढंग से समझाती हैं । उद्धव के योग के प्रति गोपियों की यह सहनशीलता तुलसी के भ्रमरगीत की विशेषता है । तुलसी की गोपिका अधिक से अधिक इतना ही कहती हैं :—

तुलसी है सनेह दुःखदायक नहिं जानत ऐसो को है ?
तऊ न होत कान्ह को सा मन, सबै साहिबहि सो है ।

तुलसी ने अपने भ्रमरगीत में न तो श्री कृष्ण द्वारा उद्धव का भेजा जाना दिखाया है, न उद्धव का गोपियों से कुछ कहना और न उद्धव का गोपियों के प्रेम से प्रभावित होकर ब्रज लौटना । केवल

गोपियों की दसबीस उक्तियों में उनका भ्रमरगीत सिमटकर रह गया है। उनके पदों में तारतम्य का अभाव है।

रीतिकालीन कवि और रहीम—रहीम भक्तिकाल के फुटकल कवियों में रखे गये हैं। भिन्न २ विषयों पर कविता लिखते हुए रहीम ने कुछ बरवै भ्रमरगीत प्रसंग पर भी लिख दिये हैं, उनमें कोई क्रम-बद्धता नहीं है। इन छन्दों में दो बातें हमें स्पष्ट रूप से झलकती हैं। एक तो रहीम की गोपियाँ बड़ी सीधी और भोली भाली हैं, सूर की गोपियों की ही भाँति वे कुछ समझती नहीं हैं और दूसरे यह कि श्री कृष्ण के प्रति उनका अनुराग अगाध है और इसीलिये उनकी अंतर्कथा भी असीम है। इस सबका आभास एक छोटे से बरवै को पढ़कर ही पाया जा सकता है।

ब्रजवासिन के मोहन जीवन प्रान।
ऊधौ यह संदेश वा', अकह कहान॥

सोचने की बात कि जिन ब्रजवासियों के प्रारम्भ हैं मनमोहन, वे जीते कैसे होंगे।

सेनापति—सेनापति के काव्य में भी यह प्रसंग दो एक छंद में अलंकारिक रूप में आगया है किन्तु उनमें मर्म को स्पर्श करने की क्षमता नहीं है केवल परंपरा को आगे बढ़ाने में ही भाग लिया है। गोपियों के विरह की तुलना सागर से की गई है। और कुछ कुब्जा को भी भला बुरा कहा है।

मतिराम—मतिराम ने इस प्रसंग को लेकर कुछ छंद अलंकारों के उदाहरण स्वरूप रचे हैं किन्तु उनमें भावुकता का यथेष्ट समावेश किया गया है। उनकी गोपियाँ कृष्ण को उलाहना देते हुए कहती हैं:—

ऊधौ नहीं हम जानत ही, मनमोहन कूबरी हाथ बिके हैं।'

कृष्ण का एक तो यह अनाचार और ऊपर से ऊधव का यों गोप-देश गोपियों को खल गया। वे झुँझलाकर कुछ कहना ही चाहती थीं

कि उन्हें ख्याल हुआ, ऊधव तो श्री कृष्ण के सखा हैं उनका अनादर ठीक नहीं, तब उन्होंने विवेक से काम लिया। उद्धव का कहना था 'वियोग छोड़कर योग करो' मतिराम की गोपियों ने इस बात को ही अपने मर्मिक तर्क से गलत सिद्ध कर दिया, उनकी बात बन गई।

गोपियों का कथन था :—

निसिदिन श्रोननि पियूष सौं पियत रहैं,
छाय रह्यौ नाद बाँसुरी के सुर ग्राम को।
तरनि-तनूजा तीर बन कुंज बीथिन में,
जहाँ तहाँ देखति हौं रूप छवि धाम कों,
कवि 'मतिराम' होत हातो ना हिये ते नैक।
सुख प्रेम गात को परस अभिराम को,
ऊधों तुम कहत वियोग तजि योग करो,
लोग सब करैं, जो वियोग होय स्याम को।

उनकी गोपियाँ उद्धव को दोष नहीं देतीं, वे कहती हैं कि प्राण प्यारे कृष्ण यदि हमें न छोड़ते तो तुम ऐसी उलटी बातें कहने क्यों आते। कृष्ण जो भी करें पर गोपियाँ तो अपने मार्ग पर अविचल हैं। इस प्रकार मतिराम के छंद भी इस विषय पर स्फुट रूप में हैं पर उनकी गोपियों में यथेष्ट बुद्धि है और सहृदयता है।

देव—देव ने अन्य कवियों की अपेक्षा इस विषय पर कुछ अधिक छंदों की रचना की है किन्तु इस विषय को लेकर स्वतंत्र रचना उन्होंने भी नहीं की - उनके सभी छंदों से गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति दृढ़ अनुराग ही लक्षित होता है। कुछ चमत्कारिक उक्तियों में गोपियों की भावनायें व्यक्त हुई हैं :—

कुँजन मैं टेरी हैं जु श्याम को सुमिरि नीके।
हाथ लै न फेरि है सुमिरि नीके मनिका।

दास—भिखारीदास जी का इस प्रसंग पर एकाध ही छंद पाया जाता है चमत्कार प्रधान होने के कारण भावों की कोई विशेषता नहीं है।

पद्माकर—पद्माकर जी ने अपने वाग्वदैग्ध्य एवं रचना चातुरी द्वारा इस परंपरा में कुछ रत्न अवश्य मिला दिये हैं। उनके छंद भावों की दृष्टि से अति उत्कृष्ट बन पड़े हैं। उनकी गोपियाँ भी मतिराम की गोपियों की तरह कृष्ण से दूर रहने पर भी एकात्मकता का अनुभव करने लगती हैं। एक गोपी उद्धव से कहती है :—

नैनन बसे हैं अंग अंग हुलसे हैं रोम,
रोमनि रसे हैं निकसे है को कहत हैं।
ऊधो वे गोविंद कोऊ और मथुरा में यहाँ।
मेरे तो गोविंद मोहि मोंहि मोंहि में रहत हैं।

प्रत्येक शब्द सीधे हृदय पर चोट करने वाला है।

घनानन्द—घनानंद की गोपियाँ सब कुछ छोड़ सीधे सीधे उद्धव से श्रीकृष्ण के प्रेम की महिमा का ज्ञान करने लगती हैं :—

गुलम लता हैं सीस धरयौ चहैं धूरि जाकी,
कहियै कहा निकाई महिमा सरसकी:
आँखिन लगी है प्रीति पूरनपगी हैं अति,
आरति जगी है ब्रज भूमि के दास की॥

संक्षेप में रीतिकालीन कवियों का भ्रमरगीत काव्य इसी रूप में उपलब्ध है। अन्य कवियों ने भी इस विषय पर फुटकल रचनाएँ की होंगी—यह खोजा जासकता है। कुछ प्रमुख कवियों की प्रवृत्तियों का विश्लेषण यहाँ किया जा चुका है। इस प्रकार से रीतिकाल के अंत तक आते-आते भ्रमरगीत प्रसंग बहुत घिसा-पिटा विषय बन चुका था और उसमें कुछ आकर्षण शेष नहीं रह गया था। किसी किसी भ्रमरगीत में तो कथा-क्रम से अभाव में भ्रमर के प्रवेश की बात भी नहीं मिलती, जहाँ 'ऊधो' को संबोधित कर दिया है वहाँ भ्रमरगीत का ध्यान स्वतः आजाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सारे रीतिकालीन भ्रमरगीत में कोई काव्यगत विकास देखने में नहीं आता आधुनिक युग मे आकर अवश्य इस विषय ने बहुत नया रंग-ढंग ग्रहण किया है।

भारतेन्दु और आधुनिक कवि—आधुनिक युग में आकर रीति शास्त्र पर छंदात्मक रचनाएँ कम होगईं। विविध विषयों पर रीति मुक्त होकर कविजनों ने काव्य सृजन आरंभ किया। लक्षण को चरितार्थ करने के लिये उदाहरण रचना बद्ध होगया, इससे पुराने और नये जो भी विषय उठाये गए, स्फुट अथवा विशद् जिस रूप में भी वर्णित हुए, रहे वे स्वतंत्र ही। भारतेन्दु जी इस आधुनिक साहित्य की विविध धाराओं के प्रवर्तक थे। उनकी जो स्फुट रचनाएँ भ्रमरगीत प्रसंग को लेकर बनी हैं काफी मार्मिक हैं। भावना और विषय निरूपण पर सूर की छाप भले ही स्पष्ट है किन्तु फिर भी प्रसुं विष्णुता उनके काव्य का प्रधान गुण है विरहिणी ब्रजांगनाओं के अतिरिक्त उद्‌गार बड़ी ही सफलता से व्यक्त हुए हैं। गोपियों का यह कथन देखिये—

मथुरा के देसवा से भेज लै पियरवाँ रामा।
हरि हरि ऊधो लाए जोगना की पाती रे हरि॥
सब मिलि आओ सखी सुनो नई बतियाँ रामा।
हरि हरि मोहन भए कुबरी के संघाती रे हरी॥
छोड़ि घर बार अब भसम रमायो रामा।
× × × ×
हरि हरि सुनत जुड़ाओ सब छाती रे हरी॥

उनकी सारी निराशा और करुणा ऊपर की पंक्तियों में फूट पड़ी है। लेकिन इस व्यथा का दोष वे कृष्ण के माथे न मढ़कर अपने को ही दोषी कहती हैं:—

हरिचन्द न काहु को दोष कछू मिलि हैं सोइ भाग में जो उतर्यो।
सबको जहाँ भोग मिल्यो वहाँ हाय वियोग हमारेइ बाँट परयो॥

इसमें एक हिन्दू ग्रहिणी की विरह वाणी की झलक अपने स्वाभाविक रूप में मिलती है। इनकी गोपियाँ अगर तर्क भी करती हैं तो भोली-भाली सूर की गोपियों की तरह। कभी-कभी वह खीज भी जाती हैं और कहती हैं—

ऊधौ जू सूधौ गहो वह मारग ज्ञान की तेरे जहाँ गुदरी है।
कोऊ नहीं सिख मानि हैं ह्याँ इक श्याम की प्रीति प्रतीति खरी है॥
ये व्रजबाल सबै इकसी 'हरिचन्द' जू मंडली ही बिगरी है।
एक जो होय तो ज्ञान सिखाइए कूप ही में यहाँ भाँग परी है॥

मुहावरे के प्रयोग ने तो जैसे गोपियों के कथन का महत्व और स्वाभाविकता और भी बढ़ा दी है। इस प्रकार भारतेन्दुजी में हमें इस विषय की अपेक्षाकृत अधिक गहराई और सहानुभूति मिलती है।

प्रेमघन—प्रेमघन में वह गहराई नहीं आने पाई है। एकाध सुन्दर उक्तियों के दर्शन अवश्य हो जाते हैं:—

लागी मोहि चाह की चुड़ैल कुछ ऐसी भगी,
भभरि कै जासौं लाज गुरुजन वृन्द की।

पर इसमें सूझ के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता। गोपियाँ अधिक से अधिक यही कह पाती हैं कि हमें कृष्ण को छोड़ अन्य कुछ आता ही नहीं, इसलिये—

ऊधो बात कहो कछु नीकी।
सुन्दर श्याम मदन मनमोहन श्याम पियारे पीकी॥

सत्यनारायण 'कविरत्न' जी ने भी एक भ्रमरगीत 'भ्रमर दूत' के नाम से लिखा है। उन्होंने अपने भ्रमर से ही दूत का काम लिया है। उनका भ्रमर माता यशोदा का संदेश का ही बनता है। कविरत्न जी के भ्रमर दूत में कथारंभ बिल्कुल ही सीधा सादा है। पुत्र वियोग में माता यशोदा दिन दिन विकल और क्षीण होती जाती हैं और कृष्ण कंश बध करके द्वारिका प्रस्थान कर जाते हैं। वर्षा ऋतु की मनोहारिता के आते ही यशोदा को कृष्ण का स्मरण होने लगता है और तब—

सुधि बुधितजि माथौ पकरि करि करि सोच अपार।
दृग'जल मिस मानहुँ निकरि, बही विरह की धार॥
कृष्ण रटना लगी॥

कवि रत्न जी ने अपनी आधुनिक दृष्टि द्वारा यशोदा से अपनी निरक्षरता पर संतापित कराया है। उन्हें कोई ठीक संदेश ले जाने वाला ही नहीं मिलता इसलिये वे और भी चिंतित हो जाती हैं तब स्वयं कृष्ण भ्रमर का रूप धारण करके आते हैं और उनसे (भ्रमर से) संदेशा कहती हैं। कहना नहीं होगा कि कवि रत्न जी के भ्रमर दूत में भ्रमरगीत की परंपरा ढूंढना निरर्थक हैं वहाँ पर केवल तत्कालीन सामाजिक दुरवस्था के प्रति क्षोभ का प्रकाशन है। इस काव्य में न तो गोपियों का समावेश है और न उनकी भ्रमर के प्रति उक्तियाँ हैं। उद्धव को तो कहीं नाम ही नहीं है फिर सगुण निर्गुण के टंटे का प्रश्न ही क्या जो भ्रमरगीत का मुख्य प्रयोजन है। ऐसी दशा में उसे भ्रमरगीत की परंपरा की चीज मानना अनुपयुक्त होगा।

हरि-औध—अपने प्रिय-प्रवास में हरिऔध जी ने अवश्य ही इस प्रसंग को अधिक विस्तार पूर्वक किन्तु आधुनिकता के आवरण में ढांक कर प्रस्तुत किया है। उसमें कथा क्रम कभी अपेक्षाकृत अधिक निर्वाह पाया जाता है तथा उसकी कथा उसी रूप में प्राप्त है जिस रूप में वह श्रीमद्भगवत में उपलब्ध है फिर भी उसमें अपने ढंग की सबसे मौलिक चीजें मिलती हैं। जैसे द्वारिका से ब्रज तक के पथ का विस्तार से वर्णन, माता यशोदा का कृष्ण का रुला देने वाला मार्मिक गुणानवाद आदि। हरिऔध की गोपियों में न व्यंग है और न छिछोरापन। वे अत्यंत गंभीर हैं और आधुनिकता में पगी हुई हैं। 'प्रियप्रवास' में भ्रमर का समावेश भी नहीं है और न उलाहना है। राधा का जो रूप हरिऔध जी ने प्रस्तुत किया है वह एक आधुनिक भारतीय नारी का सजीव चित्र है। इस प्रकार से हरिऔध जी के आधुनिकता के समावेश एवं गाँधीवाद के प्रभाव से कुछ मौलिक उक्तियों द्वारा इसका रूप ही बदल दिया है।

मैथिलीशरण गुप्त—मैथिलीशरण जी ने भी एक 'द्वापर' नामक काव्य लिख कर इस प्रसंग को कुछ उठाकर प्रस्तुत किया है। उद्धवजी

पहले तो माता यशोदा को समझाते और धैर्य बँधाते हुए कहते हैं—

माँ तुझको किसकी चिंता है,
अच्युत है सुत तेरा।

बाद में गोपियों के साथ पहले तो अपनी सहानुभूति दिखलाते हैं, उनका क्रोध शांत करते हैं और उसके बाद कृष्ण को परमात्मा बना कर उनसे कहते हैं कि भ्रम में न फँसो, संसार माया का प्रपंच है, कैसे तुम उनको पाओगी? उद्धव बड़ी नीतिज्ञता से काम लेते हैं किन्तु गोपियाँ भी उनकी बात का संदुर उत्तर देती हैं कि सरस हृदय नीरस ज्ञान की ओर जाने में असमर्थ हैं। गोपियाँ माया को मिथ्या नहीं मानती—

मिथ्या कैसे है माया भी
जब तक वह माया वी?

इस प्रकार गुप्त जी की गोपियों में भी सुन्दर वाग्वैदग्धता है। उद्धव की बातों का विरोध और खंडन करती हुई भी त्यागमयी ईर्षा मुक्त गोपिकाएँ अंत में आदर पूर्वक उन्हें विदा देती हैं तथा भारतीय ललनाओं की भांति सब दोष अपने ही माथे स्वीकार करती हैं। और किसी को भला बुरा नहीं कहतीं।

उद्धवशतक—अनेकानेक कवियों ने नंददास के बाद भ्रमरगीत को उठाया किन्तु नवीनता और गंभीरता समन्वित रचना उनके बाद देखने में रत्नाकरजी की ही मिलती है। विषय बहुत प्राचीन होकर भी सर्वथा मौलिक अतः आकर्षक होकर सामने आया है। एकबार फिर रत्नाकर की गोपियों में वही सूर की सी वचन भंगी के दर्शन होते हैं, वही ब्रज का पूरातन प्रेमसिक्त वातावरण देखने को मिलता है। मौलिकता के नाम पर आरंभिक उद्भावनाएँ नवीन हैं, अलंकारिक कौशल में बहुत कुछ नयापन है युक्तियों और तर्कों में नवीनता है। कहने का तात्पर्य यह है कि 'रत्नाकर' जी ने रीति और भक्ति का सुन्दर समन्वय करके भक्ति और रीति के एक साथ

ही दर्शन कराये हैं। उनकी भावना भक्तों से ली गई हैं और रचना शैली रीतिकालीन कवियों से विषय को इस मौलिक ढंग से प्रतिपादित किया है कि उसमें एक अद्भुत आकर्षण आ गया है। इतने घिसे पिटे प्रसंग में भी इतना आकर्षण रत्नाकरजी के रचना कौशल द्वारा ही संभव था। मंगलाचरण के पश्चात् काव्य विषय में एक नये ढंग से प्रवेश किया गया है। एक दिन कालिंदी में स्नान करते हुए कृष्ण ने एक मुरझाये हुए कमल को देखा। उस पद्म के रूप और गंध ने सहसा राधिका की स्मृति दिलादी। वह अपूर्व सुखदायिनी स्मृति बड़ी ही व्यथा—जनक सिद्ध हुई। कृष्ण मूर्छित होकर गिर पड़े, कोई भी उपचार कृति कार्यता न प्राप्त कर सका। शुक द्वारा सहसा राधा का नाम उच्चारण किये जाने पर कृष्ण को चेतना आती है। और फिर उद्धव उनको पकड़ कर गृह तक लाते हैं उसी स्मृति में डूबते उतराते कृष्ण को ब्रज के सारे दृश्य एक एक करके सामने आने लगते हैं और उन्हें माता यशोदा की मलाई और मक्खन, राधा का मुख-ब्रज तथा गोपी गाय ग्वालों की प्रेम भरी क्रीड़ायें विह्वल बना देती हैं। ज्ञानी उद्धव भी उनकी यह दशा देकर अधीर हो उठते हैं। वे कृष्ण का सारा ज्ञान बता डालते हैं लेकिन प्रेम के रोगी को इस औषधि से कब चैन पड़ सकता है। वे उद्धव से कहते हैं कि अगर समझाने पर ही तुले हुए हो तो एक काम करो—

आवो एकबार धरि गोकुल गली की धूरि
तब इहिं नीत की प्रतीत धरि लैहैं हम।
मन सौं, करेजे सौं, स्त्रवण—आँखिन सौं
ऊधव तिहारी सीख भीख करि लै हैं हम॥

उद्धव ब्रज जाने के लिये तैयार होते हैं, श्रीकृष्ण लाख लाख अभिलाषाओं से भरे ऊधव से कहते हुए ब्रज के रास्ते पर बड़ी दूर तक चले जाते हैं। सूर के कृष्ण उद्धव को इस प्रकार से ललकारते (challenge) नहीं हैं वे केवल चाहते ही हैं कि उद्धव के मानस

को भी प्रेम सुधा का सुख मिल जाय। न ही ऐसी उद्भावना नंददास आदि में पाई जाती है।

ब्रज में पहुँचने पर और गोपियों से बहुत कुछ भलाबुरा सुन लेने पर ही सूर ने उद्धव के हृदय में प्रेमाकुंर उत्पन्न किया है लेकिन रत्नाकरजी के उद्धव पहले ही अपनी ज्ञान गठरी को पटक जाते हैं और उनकी सारी पूंजी रास्ते में करीलनि के झाड़ों में और तमालों की डालों में ही उलझ कर गिर पड़ती है। और गोपियों की दशा देखकर उद्धव की जो दशा होती है वह तो आश्चर्य में ही डाल देती है। जिन ऊधव को सुख दुःख, शीत घाम कुछ नहीं सताता था उनको लोग इस हालत में देखते हैं—

सूखे से स्रमें से सकबके से सके से थके
भूले से भ्रमे से भभरे से भकुवाने से।
होले से हले से हूल-हूले से हिय में हाय
हारे से हरे से हेरत हिराने से॥

इस प्रकार से रत्नाकर जी ने विषय का प्रतिपादन बड़े ही मौलिक ढंग से किया है (देखिये प्रश्न ३ मौलिकता के लिये है)। क्या भावों की गहनता एवं उत्कृष्टता तथा स्वाभाविकता, क्या भाषा की सरसता एवं शालीनता. क्या रचना चातुर्य—सभी दृष्टियों से उद्धवशतक एक उच्च कोटि का अपने ढंग का अति आकर्षक काव्य है। सूरदास एवं नंददास के पश्चात् अगर कोई भ्रमरगीत भी रचना में सफल कहा गया है तो रत्नाकर जी ही उद्धवशतक का आधुनिक ब्रज भाषा काव्य में उच्च स्थान है।

प्रश्न ११—"भक्तों की अपेक्षा रत्नाकर कम रसमय किन्तु अधिक सूक्ति प्रिय हैं। रीतिकवियों की अपेक्षा वे साधरणत: अधिक भावनावान् अधिक शुद्ध और गहन संगति के अभ्यासी हैं" 'उद्धवशतक' का विशेष रूप से दृष्टि में रखते हुए इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिये।

हल—आधुनिक काल के ब्रजभाषा कवियों में रत्नाकर सर्वश्रेष्ठ कवि कहे जाते हैं। इस खड़ी बोली के युग में रत्नाकर जी ब्रजकी

माधुरी से एक वार फिर साहित्य के क्षेत्र को सिंचत कर गये हैं। रत्नाकर जी आधुनिक युग की मनोवृत्तियों से दूर मध्ययुग की मनोवृत्ति लेकर मध्ययुग में ही विचरण करते थे। उन्होंने अपना आदर्श भी उन्हीं कवियों को वनाया था जो मध्यकालीन थे। उन्होंने अपने ाव्य की आत्मा के लिये तो प्रायः भक्तिकाल के कवियों को सामने रखा और कविता कलेवर के लिये रीतिकालीन कवियों की शैली को अपनाया। इस कार्य में कवि के स्वभाव और संस्कारों ने भी वहुत कुछ योग दिया। कवि स्वभाव से वहुत विनोदी एवं चपल था तथा संस्कारों से भक्त—भक्ति भी उसे वल्लभ संप्रदाय की मिली थी जो उसकी रसिकता में वाधक नहीं थी। इसलिये एक ओर तो कवि भक्तिकालीन कवियों की भावनाओं में डूवा रहा और दूसरी और चैतन्य होकर रीतिकालीन कला को अपनाने में क्रियाशील रहा। शब्द योजना, अलंकार प्रयोग, लाक्षणिक वैचित्र्य चमत्कार प्रदर्शन, भापा सौष्ठव, अनुप्रासप्रियता आदि के लिये तो कवि ने रीतिकाल में झाँका और भावों की स्वाभाविकता, मार्मिकता एवं गम्भीरता के लिये भक्तिकाल में। इसलिये कवि के मार्मिकता प्रवं चमत्कार प्रियता तथा दूर की सूझ दोनों साथ साथ रहीं। परन्तु क्योंकि कवि पहले था और भक्त पीछे, उसमें वह तन्मयता, वह मनोमोहकता एवं गांभीर्य तथा स्वाभाविकता नहीं आने पाई जो भक्तों में पाई जाती है। और चूँकि कवि कवि होने के साथ ही साथ भापा-शास्त्र का आचार्य, पिंगल का शास्त्री एवं मर्मज्ञ तथा विनोदी स्वभाव का था उसमें शक्ति प्रियता ही अधिक रही।

कवि की अधिकांश रचनाओं के विपय में यही कहा जा सकता है। वहाँ कवि की सूक्ति प्रियता ही अधिक परिलक्षित होती है—दूर की कौड़ी लाने का प्रयत्न कवि ने अधिक किया है स्वाभाविकता एवं सरलता लाने का कम। वहाँ पर कवि की रसमयता मिलती अवश्य है लेकिन कम। हाँ रीतिकालीन कवियों में जितनी भावुकता पाई जाती है उससे फिर भी अधिक है। किन्तु जहाँ तक उद्धव-

शतक का प्रश्न है वहाँ न तो भावना की ही कमी है और न कला की ही। काव्यकला के आभ्यंतर एवं वाह्य दोनों पक्षों को, भक्ति एवं रीति का उद्धवशतक में सुन्दर सामन्जस्य मिलता है। उनकी भावना भक्तों की है और कला रीतिकारों की। इसी भावना सामंजस्य के कारण 'उद्धवशतक' रत्नाकर जी की सर्वश्रेष्ठ कृति कहा जाता है। इसका संगीत मानव भावनाओं को अधिकृत करने की क्षमता रखता है। इसका पाठ करते समय वरवस ही हमें सूर के पदों का स्मरण हो आता है। भावों की मौलिकता एवं उक्तियों की नवीनता एक अपूर्व आनन्द देती है। इस प्रकार रत्नाकरजी यद्यपि अपनी सूक्ति प्रियता का संवरण उद्धवशतक में भी नहीं कर पाये हैं, परन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि उद्धवशतक की उक्तियाँ केवल कला की पच्चीकारी ही नहीं उनके पीछे एक भक्त एवं आत्म अनुभूत हृदय काम करता है। 'उद्धवशतक' की सूक्तियाँ एक अंतरंग रस से सिंचित जान पड़ती हैं जिस प्रकार "ताज" की पच्चीकारी केवल पच्चीकारी ही नहीं उसमें एक स्नेह की भावना भरी हुई है; एक विरही की आत्मा वहाँ पर सदैव चक्कर लगाती दिखाई देती है उसी प्रकार 'उद्धव-शतक" की सूक्तियाँ कला का शुष्क ढेर नहीं; करुणा-विप्रलंभ सुधा से सिक्तसाज हैं। रत्नाकरजी ने अधिकांश शृंगारी कविता ही लिखी है। उनके जीवन व्यापी शृंगार में छिपी हुई दुःख की छाया ही मानों 'उद्धवशतक' का केन्द्र पा कर साकार हो गई हैं। उसका प्रत्येक छंद भाव जगत को आकर्षित करने वाला और अति ही स्वभाविक है। कुछ छंद को छोड़ कर हम दृढ़ता पूर्वक कह सकते हैं कि उसमें कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आने पाई है। जहाँ कला का चमत्कार है वहाँ भावना का सौंदर्य लेकर संगीत का अंतरंग ध्वनि से युक्त। एक उदाहरण देखिये—

रूप रस पीवत अघात ना हुते जो तव
सोई अब आँस ह्वै उवरि गिरवौ कहैं !

कहैं रत्नाकर जुड़ात हुते देखें जिन्हैं
याद किए तिनको अवाँ सौ धिरिबो करैं।
दिननि के फेर सौं भयौ है हेरफेर ऐसौ
जाकौं हेरि-फेरि हेरिवोई हिरबौ करैं।
फिरत हुते जू जिन कुंजनि मैं आठौ जाम
नैननि मैं अब सोई कुंजफिरिबौं करैं॥

सर्वत्र ही अनूठापन है। वक्रोक्ति का कितना सुन्दर उदाहरण है। ध्वनि, रस, चमत्कार आदि सभी का कैसा सुन्दर सामंजस्य है। जिन कुंजों में पहले श्रीकृष्ण घूमा करते थे अब वे कुंज श्रीकृष्ण के नैत्रों में घूमते हैं। कथन का चमत्कार तो एक दम आकर्षित करता ही है लेकिन उसकी गहराई में जाने पर उसमें सत्यता, स्वाभाविकता एवं एक विरही हृदय के सच्चे उद्‌गार मिलते हैं। अनुप्रास तो सारे काव्य का प्राण ही समझिये। लेकिन कहीं भी अनुप्रास निर्वाह के लिये शब्दों की तोड़ फोड़ नहीं।

सारा काव्य संगीत से इस प्रकार निहित है कि उसे संगीत काव्य कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। उसमें संगीत की एक अतंरंग धारा प्रवाहित है। एक उदाहरण देखिये :—

भेजे मनभावन के ऊधौ के आवन की
सुधि ब्रज गाँवनि में पावन जवै लगी।
कहै रत्नाकर गोपिन की भौरि भौरि
दौरि दौरि नन्द पौरि आवन तवै लगीं।
उझकि उझकि पद कंजनि के पंजनि पै
पेखि पेखि पाती छाती छोहनि छवै लगी।
हमको लिख्यौ है कहा, हमको लिख्यौ है कहा
हमको लिख्यो है कहा, कहन सवै लगी॥

संगति की कैसी अतंरंग धारा इस छंद में वह रही है। 'मन भावन', 'आवन', 'पावन' आदि में कैसी लय है। ध्वनि, चमत्कार, रस, अनुप्रासों की छटा सभी एक साथ ही आकर काव्य-शोभा को

बढ़ाने में सहायक हैं। भाव की दृष्टि से, शैली की दृष्टि से, संगीत एवं माधुर्य की दृष्टि से—किसी भी दृष्टि से देखने पर छंद में कहीं कोई कमी नहीं दिखाई देती। गोपियों की उत्सुकता का कैसा सजीव चित्र खींचा गया है। गोपियों का झुन्ड उद्धव को घेर कर पत्रिका निहारने में लग जाता है लेकिन कुछ गोपियाँ देख नहीं पातीं तो वे पंजो के सहारे खड़ी होकर उझकती हैं। पंजो के सहारे खड़े होकर उझकना कितना स्वाभाविक व्यापार है। प्रेमी का यह जानने के लिये उत्सक होना कि "हमारे लिये क्या लिखा है," बिल्कुल स्वाभाविक है। भावों के स्वाभाविक चित्रण द्वारा उत्सुकता का मूर्त रूप उपस्थित कर दिया है।

रत्नाकर जी की बहुज्ञता भावों की उत्कृष्ट व्यंजना में और भी चमत्कार ला देती है। और शास्त्रों (भाषा शास्त्र आदि) का ज्ञान तो उन्हें था ही लेकिन मनोविज्ञान के भी अच्छे पारखी थे। प्राय: देखा गया है कि अगर किसी के किसी चीज को भूलने या किसी काम को न करने के लिये कहा जाय तो उसके मस्तिष्क में शीघ्र ही यह आता है कि इसे करके देखा जाय कि इसका क्या फल होता है जिसके कारण अमुक हमें ऐसा करने से रोकता है। मस्तिष्क को इस क्रिया को मनोविज्ञान शास्त्र (Psychology में Cóntrasuggestion का नाम दिया गया है। इसी मनोवैज्ञानिक आधार को लेकर गोपियों ने कहा है—

आये हो सिखावन कौं जोग मथुरा तैं तौपे
ऊधो ये वियोग के वचन बतरावौ ना।
कहै रत्नाकर दयाकरि दरस दीन्यौ,
दुख: दरिबै कौं, तौ पै अधिक बढ़ावो ना।
टूक-टूक ह्वै है मन-मुकुर हमारो हाय,
चूकि हूँ कठोर बैन पाहन चलावौ ना।
एक मनमोहन तौ बसिकै उजारयो मोहिं,
हिय में अनेक मनमोहन बसावौ ना।

तुम जितना ही उन्हें भूलने को कहते हो, उतने ही वे हमारे मन में धँसते जाते हैं। कितना सुन्दर मनोवैज्ञानिक तथ्य है। उस तथ्य का गोचर प्रत्यक्षीकरण कराने के लिये काँच के टूटकर अनेक टुकड़ों में एक ही प्रतिविम्ब का अनेक हो जाना, व्यापार भी कितना स्वाभाविक है।

गोपियों ने जहाँ अन्य छन्दों में भी उद्धव के साथ तर्क उपस्थित करके उद्धव के कथन को आत्म विरुद्ध (Self Contradictory) सिद्ध किया है। वहाँ पर भी अनूठी उक्तियाँ वन पड़ी हैं लेकिन उनके दूसरे पर दृष्टि डालने पर उनमें स्वाभाविकता एवं विरही हृदय के मार्मिक उद्‍गार हमें रसमग्न वना देते हैं। उद्धव कहते हैं, कि तुम, 'उस निरूप' निरकार पारब्रह्म की अराधना करो जो हम में तुम में सभी में व्याप्त है। इस पर गोपियों को तर्क पूर्ण एवं भाव-पूर्ण उक्ति देखिये —

हम परतच्छ में प्रमान अनुमाने नाहिं,
तुम भ्रम भौंर मैं भलें ही वहिवौ करौ।
कहै 'रत्नाकर' गुविंद ध्यान धारैं हम,
तुम मनमानौ ससा-सिंग गहिवौ करौ।
देखति सौ मानति है सूधौ न्याव जानति हैं,
ऊधौ तुम देखि हूँ अदेखि रहिवौ करौ।
लखि व्रज भूपि रूप अलख अरूप ब्रह्म,
हम न कहैंगी तुम लाख कहिवौ करौ।

हमारा तो सीधा सिद्धांत है जो हमने देखा है। उसके लिये हमें प्रमाणों की क्या आवश्यकता है। हम देखे हुए श्री कृष्ण को छोड़कर तुम्हारे रूप-रेखा विन ब्रह्म की आराधना कैसे करने लगे। हमें तो अपने साकार कृष्ण से काम है। जो हमारे सभी कामों में आते थे। —गाय दुहते थे, गोंवर्धन पूजते थे। आदि। तुम्हारे जैसे ब्रह्म को जिसके न हाथ है न पैर, आँख हैं न कान, उससे हमारा क्या काम चलेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'उद्धवशतक' की सूक्तियाँ

केवल वचन भंगिमा पर कथन का अनूठापन ही नहीं। उनमें स्वाभाविकता भी है एवं तन्मयता लाने वाली क्षमता भी। उद्धवशतक में शक्ति और रीति कलाप का और आवश्यकता दोनों का सुन्दर सामांजस्य देखने को मिलता है। रत्नाकर जी ने भक्त—कालीन कवियों की भावना का सुरुचिपूर्ण प्रवाह अपने इस ग्रन्थ रत्न में वहाया है। शतक' में भक्ति का जो रूप निष्पन्न हुआ है वह है माधुर्य भाव की भक्ति, जोकि कवि स्वभाव के अनुकूल ही है। माधुर्य भाव की भक्ति में भक्त और भगवान की स्थिति प्रेमी एवं प्रेमिक जैसी रहती है जिस प्रकार प्रेमी के हृदय में अपने प्रिय के सान्निध्य प्राप्त करने की उत्कट लालसा रहती है, उसी प्रकार भक्त के हृदय में भगवान के सामिप्य की। उसे इसके अतिरिक्त और किसी की कामना नहीं रहती। इसीलिये गोपियाँ उद्धव से कहती हैं, कि हम ब्रह्म में लीन नहीं होना चाहती है। क्योंकि उससे तो हमारा अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायगा :—

म.न्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एक ही कह्यौ जो तुम
तौहूँ हमैं भावति न भावना अन्यारी की।
जैहै बनि—बिगरि न वारिधिता वारिधि की,
धूँदता बिलैहै बूँद बिवस बिचारी की।

कितनी सुन्दर उक्ति है वारधि में अगर एक बूँद मिला भी दी जाय तो उससे उसमें कोई परिवर्तन नहीं होगा। लेकिन उस विचारी बूँद का तो तुच्छ अस्तित्व ही नष्ट हो जायगा। गोपियों के कथन से उनकी दीनता उनकी विह्वलता टपकी पड़ती है। प्रत्येक शब्द से हृदय लिपटा चला आता है। इस प्रकार से हम देखते हैं, 'उद्धवशतक' की कलाकारी रूखी कलाकारी नहीं। कथन का केवल अनूठापन ही नहीं उसमें इसका संचार भी है। और तन्मयता तथा माधुर्य भी। इसी कारण से 'उद्धवशतक' इनका श्रेष्ठ काव्य बन पड़ा है।

प्रश्न १२ :—क्या 'उद्धवशतक' के षट्ऋतु वर्णन को ऋतुवर्णन का उचित रूप कहा जा सकता है ?

हल—'उद्धवशतक' में ऋतुवर्णन के नाम पर रीतिकालीन परिपाटी का निर्वाह करने के लिये छः छन्द मिलते हैं। जैसा रसाल जी का कथन है कि छन्द उद्धवशतक में बाद में जोड़ दिये गये हैं। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि 'शतक' में प्रकृति चित्रण का अभाव देखकर तथा रीतिकालीन परंपरा के निर्वाह के लिये कवि ने ऐसा किया। रत्नाकर जी के प्रायः सभी काव्यों में किसी न किसी मात्रा में ऋतुवर्णन मिलता है और उसके दो ही रूप प्रायः देखने को मिलते हैं—(१) परंपरा मुक्त (२) अनुभूति पोषित। जो परंपरा युक्त है। उनमें वस्तुओं तथा स्वरूपों का प्रत्यक्षीकरण, ऋतुसुलभ विशेषताओं का निरीक्षण तथा चित्रण इत्यादि अधिक पाये जाते हैं। वर्णनों तथा परंपरा के अनुसार किये गये अनुभूति पोषित प्राचीन ढंग के में भी कवि ने ऋतुओं की विशेषताओं आदि की उपेक्षा नहीं की है।

उद्धवशतक में वर्णित ऋतुवर्णनों को ध्यान से देखने पर विदित होता है कि वास्तव में वे ऋतु वर्णन नहीं हैं। कृष्ण के वियोग में व्याकुल गोपियों की अवस्था की व्यंजना करने को उनकी अवतारणा हुई है। षट्ऋतुओं में होने वाली समस्त प्राकृतिक दशाओं का आरोपण गोपियों की दशा पर किया है। उदाहरण के लिये यदि वसंत ऋतु में प्रकृति में पीलिमा दिखाई देती है। कोकिल गूँजती हैं। अमराइयाँ बौरों से लदी मिलती हैं मदमती बैहर झकोरे लेती हैं। तो प्रकृति का यह सारा दृश्य गोपियों के अन्गों में और क्रियायों में कवि को परिलक्षित होता है। जैसे जायसी की विरहणी एक ओर फटती हुई ताल की दरारों को देखती है तो दूसरी ओर अपने विदीर्ण होते हुये हृदय को एक ओर टपकती हुई ओलाती को देखती है तो दूसरी ओर अपनी अश्रुवर्षा करती हुई आँखों को इसी प्रकार रत्नाकर की गोपियाँ भी ऋतुसुलभ परिवर्तनों को अपने में ही घटित करके उद्धव को दिखाती हैं। जायसी का जैसा ऋतुवर्णन यहाँ नहीं

मिलता फिरभी कुछ समता अवश्य परिलक्षित होती है। कवि के कथन से ढंग की दृष्टी से देखने पर छः छन्दों में एक समता है। सभी छन्दों के अन्तिम चरणों में कवि प्रकृति में तो किसी ऋतु का होना किसी निश्चित समय तक बताता है लेकिन गोपियों के साम्राज्य में उस ऋतु का होना निरंतर ही बना रहता है। सभी ऋतुओं में यही हाल है। अगर कवि ग्रीष्म ऋतु के परिवर्तनों एवं लक्षणों का वर्णन करता है। तो अन्त में कहता है कि विधाता की रचना में कृष्ण वियोग में तो ग्रीष्म ऋतु कुछ दिन रहती है लेकिन यहाँ तो सदैव ही बनी रहती है। इसी प्रकार अन्य ऋतुओं के विषय में कहा जा सकता है। कुछ उदाहरण देखिये :—

(अ) बिन घनश्याम धाम-धाम ब्रज मन्डल मैं,
ऊधौ नित बसित बहार बरसा की है।

(ब) काम विधि काम की कला में मीन मेख कहा,
ऊधौ नित बसत बसंत बरसाने में।

(स) षटऋतु ह्वै है कहूँ अनत दिगन्तनि मैं,
इततौ हिमंत कौ निरंतर पसारौ है।

इस प्रकार ऋतुओं के माध्यम द्वारा गोपियों की असीम विरहा अवस्था को व्यक्त करने का कवि ने प्रयास किया है। यह अपने ढंग का नूतन प्रयास है। एक ओर जहाँ उसकी अलंकृत शैली है। (रूपक और श्लेष) हमें केशव बिहारी और सेनापति के अलंकृत ऋतुवर्णनों की याद दिलाती है वहाँ दूसरी ओर उसका भाव साम्य बरबस ही जायसी वर्णित ऋतुवर्णनों की याद दिलाता है। इस प्रकार कवि का लक्ष्य एक ओर जहाँ गोपियों की वियोग व्यथा को वर्णित करने का रहा है। वहाँ दूसरी ओर अपनी असाधारण काव्य प्रतिभा द्वारा पाठक को चमत्कृत करने का भी। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उद्धवशतक का ऋतुवर्णन अपने ढंग का मौलिक एवं अनूठा है। काव्य कला के दोनों पक्षों का समावेश सम रूप भी उसमें पाया जाता है।

प्रश्न १३—उद्धव शतक में गोपियों के मनोविज्ञान के साथ दार्शनिक तत्वों का जहाँ समन्वय किया गया है, उसका निर्देश कीजिये। और इस क्षेत्र में रत्नाकर जी की मौलिकता पर प्रकाश डालिये।

भ्रमरगीत का मनोहर प्रसंग श्रीमद्भागवत् से उत्पन्न हुआ है। वहाँ गोपियों के द्वारा प्रेम और भक्ति की ज्ञान और योग के सम्मुख विशेष महत्ता दिखलाई गई है, यद्यपि गोपियाँ उद्धव द्वारा दिये गये ज्ञानोपदेश को बिना भला बुरा कहे मानलेती हैं। लेकिन हिन्दी कृष्ण काव्य में जब इस प्रसंग को पहले पहल सूर ने अपनाया तो तत्कालीन परिस्थिति के कारण उन्होंने खुले शब्दों में अपने भ्रमर गीत में गोपियों द्वारा उद्धव को भला बुरा कहलाया और प्रेम और भक्ति अथवा सगुण मार्ग की ज्ञान और योग—निर्गुण मार्ग पर विजय दिखलाई? तबसे आजतक जितनी भी रचनायें इस प्रसंग को लेकर हुईं, सबने किसी न किसी रूप में सगुण का समर्थन और निर्गुण का खंडन दार्शनिक तत्वों को उपस्थित करते हुये किया।

आधुनिक युग में रत्नाकर जी ने भी इस प्रसंग पर 'उद्धवशतक' नाम से एक रचना हिन्दी जगत के सामने प्रस्तुत की। उन्होंने भी बड़े भावपूर्ण एवं काव्यमय ढंग में सगुण निर्गुण के विवाद को मौलिक ढंग से सुलझाया और गोपियों के मनोविज्ञान में दार्शनिक तत्वों का तदनुकूल समन्वय किया। यहाँ हमें उद्धवशतक को इसी दृष्टि कोण से देखना है। प्रथम उद्धव कृष्ण को ज्ञानोपदेस करते हैं। और यह दिखलाते हैं कि 'सारे संसार में एक ही परब्रह्म की सत्ता व्याप्त है और विचार करके देखो तो ब्रह्म ही सत्य है और जगत मिथ्या है। तत्व ज्ञान के साथ ही साथ ब्रह्मज्ञान प्रधान है। कृष्ण इसके उत्तर में उद्धव से केवल इतना ही कहते हैं कि हे उद्धव! तुम जाकर एक बार गोकुल हो आओ और फिर लौट कर हमें यही ज्ञान सिखलाओ तो हम मान लें। उद्धव गोकुल को जाते तो हैं। लेकिन कृष्ण की विरहाकुल दशा से व्यथित होकर उनका सारा ज्ञान नष्ट हो जाता है और वे कुछ और ही रंग में रंग जाते हैं।

उनकी ज्ञान गठरी की गाँठ न जाने कब खुलकर रास्ते में ही फैल जाती है। गोकुल की गलियों में पहुँचकर तो उनकी आँखों से अश्रुधारा बह चलती है ज्ञान का मद बह चलता है और शरीर रोमांचित हो उठता है। ज्ञानाकेलोक से नीरस हुए मन में सरसता प्रवाहित होने लगती है। गोपियों के आने पर तो उद्धव सब कुछ भूलकर हक्के बक्के रह जाते हैं:—

देखिदसा ग्वालिन की उद्धव को गरिगौ
गुमान गान गौरव गुठाने से।
× × × ×
सूखे से स्रमे से, सक बके से, सके से थके.
भूले से भ्रमे से भमरे से, भकुवाने से॥
हौले से, हले से, हूल हूले से, हिये में हाय,
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से॥

इतने पर भी उद्धव ज्ञानोपदेश देने को तैयार होते हैं और दार्शनिक तथ्यों को गोपियों से कहने लगते हैं कि यदि कृष्ण को अपने वश में चाहती हो तो योग करो और ज्ञान द्वारा उसे प्राप्त करो; वह तुम से दूर नहीं है। मोह के कारण जिन कृष्ण को तुम अपने से विलग समझने हो वे तो तुम सबके हृदय में निरंतर ही वास करते हैं:—

चाहत स्वबस संजोग श्याम सुन्दर कौ,
जोग के प्रयोग में हियौ तो बिलस्यौ रहै।
× × ×
मोहबस जोहत बिछोह जिय जाकौ छोहि,
सोतौ सब अंतर निरंतर-बस्यौ रहै।

इतने से ही उद्धव को संतोष नहीं होता वे कहते हैं कि वह सब तो माया का ही प्रपंच है जिसके कारण सच्चिदानंद का वह सत्य सत्त्व, जो पंचतत्व निर्मित इस संसार में एकसा है, अपने वास्तविक रूप में नहीं प्रकट होता है। सर्वत्र अनेक वस्तुओं के

रूपों में वस्तुतः उसी एक ब्रह्म का रूप है, जो ज्ञान के चक्षुओं से दिखाई देता है। योग के द्वारा कृष्ण सब में दिखाई देते हैं अनेकत्व में एकत्व (Unity in diversity & diversity in unity) का उच्च सिद्धान्त जो 'उद्धव' जैसे प्रकांड ज्ञानी को ही फबता है, कवि ने बड़े ही चातुर्य से कांच के टुकड़ों का दृष्टान्त देकर उद्धव द्वारा गोपियों को समझाया है—

माया के प्रपंच ही सों भासत प्रभेद सबै,
कांच फलकीन ज्यों अनेक एक सोई है।

अब गोपियाँ मनोविज्ञान के अनुकूल ही उद्धव को जो उत्तर देती हैं वह स्वभाविक होता हुआ भी कितना मार्मिक है जो हृदय को छूने की शक्ति रखता है। साधारण स्त्रियाँ दर्शन शास्त्र के 'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या' आदि तत्वों को कैसे समझ सकती हैं। जिस तत्व को ऋषि मुनि भी सुगमता से नहीं जान पाते वह गोपियों के लिये तो टोक भैंस के आगे ढोल बजाना होगा। गोपियों के पास तो केवल हृदय है जो प्रेम का सौदा कर सकता है विवेक पूर्ण मस्तिष्क नहीं जो ज्ञान का क्रय करे। इसीलिये वे उसे कुछ नहीं समझ पातीं और बड़े भोले भाले रूप में वे उद्धव से पूछती हैं कि प्यारे कृष्ण कब आवेंगे और उन्हें वे कब देखेंगी :—

ऊधौ कहौ सूधौ सौ सनेस पहिले तौ यह.
प्यारे परदेस तें कबै धौं पगपारि हैं।

× × ×

बैननि उचारि हैं उराहनौ कबै धौं सबै,
स्याम कौ सलोनौ रूप नैननि निहारि हैं॥

गोपियाँ फिर पूछती हैं कि कृष्ण वहाँ करते क्या हैं? क्या कभी—"जाय जमुनातट पै काऊ वट छाँह माँह पाँसुरी उसाँ हि कबौं बाँसुरी बजावै हैं।" निर्गुणोपासना का जो उपदेश उद्धव ने दिया है, उसके विरोध में स्त्रियाँ अपने स्वभाविक भावों के अनुसार अनेक बातें कहती हैं और सगुणोपासना की महत्ता को स्थापित

करती हुई उद्धव का उपहास करती हैं। हठयोग के द्वारा शरीर में जो रूपांतर हो जाते हैं उनको भी गोपियाँ अपने सौंदर्य के प्रतिकूल समझती हैं और कृष्ण को प्रसन्न करने वाले अपने शारीरिक सौंदर्य को त्यागना नहीं चाहतीं।

उद्धव ने ब्रह्म को जो विश्वव्यापी, अरूप, अनाम आदि कहकर योग के द्वारा त्रिकुटी में रखकर आंतरिक चक्षुओं से देखने का विधान बताया है गोपियाँ उसे असम्भव मानती हैं और उद्धव के कथन को आत्मविरुद्ध (self contradictory) सिद्ध करते हुये कहतीं हैं कि जो रूप अनंत, अपार और अलख विश्वव्यापी है वह त्रिकुटी में नैन मूँद कर कैसे देखा जा सकता है। विरोधाभास का कैसा चमत्कार कवि ने दिखलाया है—आँखे खोलकर सभी वस्तुएं दिखाई देती हैं लेकिन यहाँ उद्धव आँखे बन्द करके देखने को कहते हैं। भला बताओ सीधी साधी अपढ़ गोपियों की समझ में ऐसी बातें कहाँ आ सकती थी उनके लिये तो उद्धव का यह कथन (आँख बन्द करके देखना) बिल्कुल ही उल्टा था। इसीलिये वे कहती हैं :—

ऐते बड़े विश्व में हेरे हूँ न पैये जाहि,
ताहि त्रिकुटी में नैन मूँदि लखिबौ कहाँ।

गोपियों का वाक् चातुर्य तथा बुद्धि चमत्कार धीरे धीरे बढ़ता जाता है और उद्धव को वे प्रत्युत्तर देने में संकोच त्याग देती हैं। आरंभ में जो स्वभाविकता; जो भोलापन गोपियों में मिलता है वह धीरे धीरे वाक् चातुर्य में बदलता जाता है लेकिन फिर भी उनके इस वाक्चातुर्य में स्त्रियोचित अल्पज्ञता की मनोरम माधुरी मिलती है। योग का अर्थ वे संयोग से लेकर उद्धव के विरति वियोगात्मक योग के विधान को असंगत बताती है। भक्ति सिद्धांत के अनुसार भक्त अपने इष्ट देव के साहचर्य को ही सर्वश्रेष्ठ अभीष्ट पदार्थ मानता है। वह भगवान में एकमेव होना नहीं चाहता। इसीलिये गोपियाँ कहती हैं :—

मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एक ही, कह्यौ जो तुम,
तोहूँ हमें भावति न भावना अन्यारी की।
जैहै बनि-बिगरि न बारिधता बारिध की,
बूँदता बिलैहै बूँद बिवस बिचारी की॥

कितने स्वाभाविक उद्गार हैं? गोपियों को ब्रह्म में लीन होकर क्या मिलेगा? क्योंकि फिर पाने वाला ही नहीं रहेगा। इसलिये इस ब्रह्म को प्राप्त करने के लिये वे अपनी वियोगाग्नि को प्रज्वलित नहीं करना चाहतीं। क्योंकि वायु से अग्नि और बढ़ती है—

चिन्तामणि मंजुल पँवारि धूरि-धारनि में
काँचमन मुकुर सुधारि धारिबौ कहा।
कहै रत्नाकर वियोग—आगि सारन कौं
ऊधौ हाय हमकौं बयारि भखिबौ कहा।

अलख और अरूप ब्रह्म के विरोध में उनका कहना है कि यदि ब्रह्म रूप रंग आदि से रहित है तो हम ऐसे ब्रह्म की आराधना नहीं करना चाहतीं क्योंकि एक ही अनंग (अंगरहित कामदेव) से यह दुर्दशा होगयी है दूसरे न जाने क्या है:—

एक ही अनंग साधि साध सब पूरी अब,
और अंगरहित अराधि करि हैं कहा।

कितनी चातुरी से निराकारिता का उपहास किया है। योगी और वियोगी की तुलना बड़े ही चमत्कार ढंग से करके गोपियाँ अपने लिये योग की अनावश्यकता इस ढंग से बतलाती हैं मानों उद्धव बिलकुल गलत ही कह रहे हैं और गोपियाँ स्वाभाविक सत्य बोल रही हैं। कहीं कहीं खिजलाकर आवेश में आकर "चेरी हैं न ऊधौ। काहू ब्रह्म के बबाकी हम, सूधे कहे देति एक कान्ह की कमेरी हैं" तक कह डालती हैं कृष्णवियोग के दुःख में भी गोपियाँ अपने को ब्रह्मानंद से अधिक सुखी पाती हैं। वास्तव में सच्चे प्रेमी और भक्त का यही आदर्श है। उद्धव ने गोपियों से कहा कि संसार

स्वप्न के समान है। इसको गोपियों ने बड़े वाक्चातुर्य से उद्धव पर ही घटित करके उद्धव को निरुत्तर का दिया है :—

जग सपनौ सौ परत दिखाइ तुम्हें,
तुम ऊधौ हमें सोवत लखात हौ।
कहै रतनाकर सुनै को बात सोवत की,
जोइ मुख आवत सो विवस बयात हौ।
सोवत में जागत लखात अपने को जिमि,
त्यौंही तुम आपहीं सुज्ञानी समुझात हौ।
जोग जोग कबहूँ न जानैं कहा जोहि जकौ,
ब्रह्म ब्रह्म कबहूँ बहकि बररात हौ।

प्राणायाम के विरोध में भी गोपियों का भोलाभाला कथन कितना स्वाभाविक है—"एक बार लै है मरि मींच की कृपा सों हम, रोकि रोकि साँस बिन मचि मरिबौ कहा' सूरवीर एक ही बार मरते हैं बार २ उन्हें मरना पसंद नहीं होता। ब्रह्मज्योति की बात भी गोपियों को कुछ नहीं जँचती इस लिये उसे वे अपने हृदय में स्थान देने में अपनी असमर्थता प्रकट करती हैं—

कहै रतनाकर बरी हैं विरहा नल में
ब्रह्म की हमारे जिय ज्योति जँचि है नहीं।

जिस हृदय में गोपियाँ ने कृष्ण को स्थान दिया है उसमें अब ब्रह्म को स्थापना करके कृष्ण के साथ विश्वासघात नहीं कर सकतीं। भक्त का प्रधान उद्देश्य ही एक इष्ट को अपने आपको समर्पित कर देना।

जिस हृदय में गोपियों ने कृष्ण को स्थान दिया है उसमें अब ब्रह्म की स्थापना करके कृष्ण के साथ विश्वासघात वे नहीं कर सकतीं। वे केवल कृष्ण के संयोग में सब कुछ करने को तैयार हैं चाहे वह योग ही क्यों न हो। ऊधौ से कहती हैं कि तुमने कृष्ण को हमारी आँखों से नहीं देखा, अगर देख लेते तो फिर योग की बातें न करते—

(१) ऊधौ ब्रह्म ज्ञान कौ बखान करते ना नैंकु,
देखि लेते कान्ह जौ हमारी आँखियाँन तैं ॥
(२) मोर के पखौअन को मौखारो चारु चाहन को,
ऊधौ अखियाँ चहै न मोर पखियाँ चहैं ।

जब उद्धव कुछ गर्वयुक्त भाषा में अपनी ढपली बजाते हैं तो गोपियाँ भी उनको जैसे का तैसा (गर्वयुक्त) ही उत्तर देती हैं:—

"यह वह सिंधु नाहिं सोखि जो अगस्त लियौ,
ऊधौ यह गोपिन के प्रेम कौ प्रवाह है ।"

इतना ही नहीं, आगे चलकर वे उद्धव पर दोषारोपण भी करती हैं वे कहती हैं कि पहले अक्रूर आये थे जो कि मूलधन (कृष्ण) को लेगये । अब तुम ब्याज (प्राणों) को उगाहने आये हो—

लै गयौ अक्रूर क्रूर तब सुख मूर कान्ह,
आये तुम आज प्रान-ब्याज उगहन कौं ।

इस प्रकार से उद्धव का ज्ञान गोपियों की अथाह भक्ति में ऐसा लुप्त हो जाता है कि उद्धव मंत्र मुग्ध से ही खड़े रह जाते हैं । इस प्रकार ज्ञानयोग के ऊपर गोपियों की स्वाभाविक प्रेमा-भक्ति विजय पाती है । वास्तव में लौकिक व्यवहार में योग और ज्ञानोपदेश का होना वहीं तक ठीक है जहाँ तक उसकी उपयोगिता हो । इसी उपयोगिता के कारण गोपियाँ कहती हैं—

गावरौ अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म,
ऊधौ, कहौ, कौन धौं हमारे काम आइ है ।

प्रश्न १४—'उद्धवशतक' और "प्रियप्रवास' के उद्धव प्रसंग की तुलना कीजिये ।

हल—आधुनिक कवियों के नवीन दृष्टिकोण के प्रतिकूल रत्नाकर जी ने तो 'उद्धवशतक' की रचना के लिये भ्रमरगीत प्रसंग या उद्धव गोपी संवाद को अपनाया ही, लेकिन आधुनिकता के प्रति असीम आस्था रखने वाले महाकवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरि औधजी भी "खड़ी बोली का अतुकान्त महाकाव्य" प्रिय-प्रवास

रचने के लिये महाकाव्य के नियमों से निबद्ध होकर कृष्ण कथा के जा टकराये। (महाकाव्य की कथा प्राचीन पौराणिक अथवा ऐतिहासिक होनी चाहिये)। क्योंकि प्रियप्रवास का कथानक कृष्ण से संबंधित है उसमें उद्धव-गोपी प्रसंग का आजाना भी स्वाभाविक है। अब हमें यहाँ पर 'उद्धवशतक, और प्रियप्रवास के इसी उद्धव प्रसंग को तुला पर तौलना है।

कहना न होगा कि दोनों रचनाओं पर दृष्टिपात करने पर उनके दो विभिन्न दृष्टिकोंण हमारे सामने उपस्थित होते हैं। "हरिऔध" जी ने प्रसंग को तो उसी पुराने चले आते हुये को अपनाया लेकिन उसका कलेवर और उसकी आत्मा दोनों ही आधुनिकता की साजसज्जा से सज्जित होकर हमारे सामने आईं। हरिऔध जी का उद्देश्य सगुण का मंडन और निर्गुण का खंडन करना नहीं था। और सिक्ख धर्म के अनुयायी होने के कारण न वे इसके कायल ही थे। आधुनिक युग की तर्क की प्रवृत्ति को अपनाते हुए उन्होंने कृष्ण कथा के प्रत्येक प्रसंग को ऐसे साँचे में ढाला जिसे (Reasonable-ness) की कसौटी पर कसने में सफलता प्राप्त हो। यही कारण है कि प्रियप्रयास के उद्धव प्रसंग में भी हमें वही मनोवृत्ति कार्य करत मिलती है। उनके उद्धव, उनकी गोपीयाँ उनकी राधा तथा नंद यशोदा सभी आधुनिक शिष्टाचार में पगे हुये हैं। उनकी गोपियाँ, उनकी राधा तथा आधुनिक अन्य सभी ब्रजवासी आधुनिक काल के शिक्षित एवं शिष्ट पुरुषों की तरह उद्धव से व्यवहार करते हैं और मानव स्वभाव के स्वाभाविक उद्गारों को बड़े ही संयत रूप में उद्धव के सामने प्रकट करते हैं।

उनकी राधा, उनके कृष्ण लोक सेवक पहले हैं प्रेमी-प्रेमिक तदंनतर। यही कारण है कि हमें वहाँ पर राधाकृष्ण का यही रूप अत्यंत आकर्षित करता है और अत्यंत विरहातुर होने पर भी राधा के यही शब्द हमारे कान में पड़ते हैं "प्यारे जीवें, जगहित करें गेह चाहे न आवें।" कहने का तात्पर्य यह है कि "हरि औधजी

का दृष्टिकोण गाँधी वादी एवं सुधार वादी रहा है। वे आधुनिक युग में उत्पन्न होकर गाँधी युग में भ्रमण करते थे जबकि रत्नाकर' जी मध्यकालीन प्रवृतियों को अपनाये हुये मध्ययुग में ही निवास करते थे। उन्होंने अपने काव्य की आत्मा प्रायः भक्तिकाल से ली और उसका कलेवर रीतिकाल से। यही कारण है कि "उद्धवशतक" में एक बार फिर वही चातुर्य तथा भक्ति मिलती है जो सूरदास एवं नंद दास दिखा चुके थे। सूर की गोपियों का वाग्वैदग्ध्य, नंद की गोपियों की तर्कशक्ति, रत्नाकर की गोपियों में मिलती हैं। रीति-कालीन कवियों का विशेष प्रभाव तो उनमें विशेपतौर से परिलक्षित होता ही है। रीतिकालीन कवियों की भाँति अलंकारों का प्रधान्य इनमें मिलता है जिसके कारण कुछ छंद तो हास्यास्पद भी हो गये हैं। उदाहरण स्वरूप वियोग की कथा को ज्वर मान कर उसके लिये इसका प्रयोग करना कहाँ तक उचित है। देखिये—' रसके प्रयोगनि............'

जहाँ तक कथा प्रसंग का प्रश्न है हरि औधजी ने कृष्ण को व्रज की स्मृति हो आने का कोई मौलिक एवं मनोविज्ञान की दृष्टि से अधिक युक्ति संगत (Reasonable) कारण उपस्थित नहीं किया है। सूर की तरह कृष्ण को राज प्रसाद में कुछ खिन्न एवं उन्मन्न दिखा कर प्रसंग आरंभ कर दिया है। स्मृति जगने का कोई कारण नहीं दिखाया। देखिये :—

एकाकी व्रजदेव एकदिन थे बैठे हुए गेह में।
उत्मन्ना—व्रजभूमि के स्मरण से उद्विग्नता थी बड़ी।
उधौ—संज्ञक—ज्ञान-वृद्ध उनके जो एक सन्मित्र थे।
वे आये इस काल ही सदन में आनंद मग्न से।

नवमसर्ग (१)

और फिर उद्धव से कहते हैं कि मेरा जीवन पहले अत्यंत ही उन्मुक्त था; मेरा जीवन पूर्णतया स्वच्छन्द था। अब में कर्त्तव्य की कठोरता में आवद्ध हूँ। लेकिन स्नेह से पगी हुई गोपियाँ तथा

वात्सल्य की मूर्ति माता-पिता और ग्वाल वाले मुझे भूले नहीं हैं उनकी स्मृति मुझे बड़ी व्यथा देती है—

शोभा-संभ्रम-शालिनी-व्रज धरा प्रेमास्पदा—गोपिका।
माता-प्रीतिमयी प्रतीति-प्रतिमा, वात्सल्य धाता-पिता।
प्यारे गोप-कुमार, प्रेम-मणि के पाथोधि से गोप वे।
भूले हैं न, सदैव याद उनकी देती व्यथा है हमें॥

यहाँ पर कृष्ण हमें कुछ ऊबे से तो दिखाई देते हैं परन्तु उनका कर्त्तव्य पक्ष दृढ़ है। वे कर्त्तव्य को भूलने में असमर्थ हैं। यहाँ पर वे विरहातुर ही दिखलाई देते हैं कामातुर नहीं जैसा कि रत्नाकरजी के कृष्णजी। रत्नाकर जी ने प्रसंगोद्भावना के लिये मौलिक एवं मनोविज्ञान की दृष्टि से युक्ति संगत का रूप तो अवश्य उपस्थित किया है लेकिन वहाँ पर हमें कृष्ण विरहातुर की अपेक्षा कामातुर अधिक दिखाई देते हैं। प्रारंभ एक कमल के बहते हुए पुष्प से होता है। कृष्ण उसे सूँघ कर विह्वल हो जाते हैं कमल की गंध के कारण उन्हें पद्मगंधिनी राधा की स्मृति हो आती है फिर क्या होता है—"ध्यान कदलीवन मतंग लौं मताये हैं।" "मतंग लौं मताए" शब्द से ध्वनित होता है कि पूर्व स्मृति ने कृष्ण को विरहातुर की अपेक्षा कामातुर ही बनाया है जैसाकि हमने ऊपर दिखाया है। रत्नाकरजी कृष्ण उद्धव को जो उत्तर देते हैं उसमें भी एक विशेषता परिलक्षित होती है। जिससे रत्नाकरजी के कृष्ण की अतीव उद्विग्नता दृष्टिगोचर होती है—

कह कहैं ऊधौ सौं कहै हूँ तो कहाँ लौं कहैं।
कैसे कहैं कहै पुनि कौनसी उठानि तैं।
तौ लौं अधिकाई तै उमगि कंठ आइभिचिनीर,
द्वै बहन लागी बात अखियाँन तैं।

जैसा ऊपर कहा जाचुका है हरिऔधजी के कृष्ण ऊबे से थे परन्तु कर्त्तव्य के प्रति उदासीन नहीं थे, परन्तु रत्नाकर जी के कृष्ण

के हृदय में वर्तमान के प्रति विद्रोह था। वे प्रस्तुत भार को हटाकर जाना चाहते थे इसलिये वे उद्धव से कहते हैं—

गोपी ग्वाल बालनि कौं झोंकि विरहानल मैं हरिसुर-वृन्द
की बलाई है कहा,
प्यारो नाम गोविंद गुपाल को विहाय हाय, ठाकुर त्रिलोक के
कहाइ करि हैं कहा।

इससे ज्ञात होता है कि कृष्ण अपनी भूल पर पछता रहे थे। वे गोपियों को छोड़ त्रिलोक के स्वामी नहीं बनना चाहते थे। हरिऔध के कृष्ण के ठीक विपरीत भावना है। देखिये—

पेचीले नव राजनीति पचड़े जो बृद्धि हैं पारहे।
यात्रा में ब्रजभूमि की अहह वे हैं विघ्नकारी महा।
आते वासर हैं नवीन जितने लाते नये प्रश्न हैं
होता है उनका दुरूहपन भी व्याघात भारीमहा।

इस प्रकार हम देखते हैं हरिऔधजी के कृष्ण में लोक सेवा की भावना अधिक है।

रत्नाकरजी के कृष्ण जो कुछ कहते हैं उसका प्रभाव तीनों लोकों पर पड़ता है। इससे कविता का यह प्रयास ज्ञात होता है कि कवि कृष्ण के विराट रूपकी ओर संकेत कर रहा है। जिस प्रकार भरत के द्वारा रामको मनाते देखकर इन्द्र शंकित हुआ था उसी प्रकार कृष्ण की बातों को सुनकर सुरपुर में "दुरदिन" छा जाता है। हरिऔधजी ने कृष्ण का विराट स्वरूप न लेकर उन्हें एक आदर्श महापुरुष के ही रूपमें उपस्थित किया है।

हरि औधजी के उद्धव कृष्ण की इन वियोग की बातों को सुनकर उन्हें कुछ ज्ञानोपदेश देते दिखाई नहीं देते और न कुछ राजनीतिक रहस्य ही. वे इसका कारण समझते हैं जैसाकि रत्नाकरजी के उद्धव करते दिखाई देते हैं। वे कृष्ण के कहने पर चुपचाप ब्रज जाने को प्रस्तुत हो जाते हैं और दूसरे दिन प्रातः ही उनका रथ ब्रजको प्रस्थान करता हुआ दिखाई देता है। इसके विपरीत रत्नाकरजी के

उद्धव कृष्ण को एक अच्छा खासा लेक्चर ठीक उसी प्रकार देते हैं जिस प्रकार युद्ध से विमुख होते हुये अर्जुन को कृष्ण ने दिया था। वे कहते हैं—आपुहीं सौंपुकौ आ मिलाप और विछोह कहा, मोह यह मिथ्या सुख, दुःख सब ठायौ है।" लेकिन कृष्ण पर इसका कुछ भी असर नहीं होता। जैसाकि सूर आदि में पाया जाता है। रत्नाकरजी के उद्धव को कृष्ण की इन बातों का कुछ राजनीतिक कारण भी जान पड़ता है जैसा कि अन्य कवियों के उद्धव को नहीं। उद्धव के विशेष हठपर कृष्ण उन्हें ललकार कर कहते हैं—"आओ एकबार धारी गोकुल गली की धूरि, तब इहिं नीति की प्रतीत धरि लैहैं हम।" अन्य किसी कवि के कृष्ण ने उद्धव को इस प्रकार खुल कर नहीं ललकारा (Challenge) था।

हरि औधजी की भांति रत्नाकरजी ने मार्ग का वर्णन नहीं किया है। रत्नाकरजी के उद्धव ब्रज में पहुँचते ही सब ज्ञान भूल जाते हैं और उनकी ज्ञान गठरी तमालों एवं करील के झाड़ों में ही उलझी रह जाती है। हरिऔधजी के उद्धव के साथ ऐसा नहीं होता क्योंकि वे वही संदेश सुनाने गये थे जो कृष्ण ने उनको दिया था उनका उद्देश्य ज्ञानोपदेश देना नहीं था। उनके ऊपर ब्रजकी अवस्था का वही प्रभाव पड़ता है जो एक साधारण मनुष्य पर पड़ सकता है। वे ब्रज की दुखमयी अवस्था को देखकर दुःखी होते हैं। लेकिन रत्नाकरजी के उद्धव का और ज्ञानी उद्धव का तो विचित्र ही हाल है। गोपियों की दशा देखकर तो वे 'सूखे से स्रमें से, हारे से हूल हाँले से' रह जाते हैं।

रत्नाकर जी की गोपियाँ उद्धव को आया हुआ देखकर नंद की पौरि में आकर इकट्ठी होजाती हैं और वहीं तीव्र उत्कंठावश वे उद्धव से पूछती हैं और फिर उद्धव से जब उनको अप्रत्याशित उत्तर मिलता है तो वहीं वे उन्हें भला-बुरा भी सुनाने लगती हैं और सारे प्रसंग में नंद यशोदा और राधा न कुछ कहती हुई दिखाई देती हैं और न सुनती हुई। अंत में कुछ भेंट देती हुई अवश्य दिखाई

देती हैं रत्नाकर जी की गोपियाँ उद्धव के नंद के घर आने का समाचार सुनकर आती हैं—"धाईं धाम-धाम तैं अवाई सुन ऊधव की" और फिर उनकी उत्कंठा बढ़ती जाती है। यहाँ हम पहले से ही गोपियाँ अथवा ग्वालाओं आदि को मथुरापथ की ओर देखते हुये जैसाकि सूरने और हरिऔधजीने भी दिखाया है—

"उसी दिशा से जिस ओर दृष्टि थी, विलोक आता रथमें-सारथी।
किसी किरीटी पट-पीत-गौरवी। सकुंडली श्यामल काय पान्थ की।"

जो कि उनकी गोपियों आदि के प्रेमकी-तीव्रता की व्यंजना करता है; तथा जो मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक भी है, नहीं पाते। रत्नाकरजी के उद्धव एक ही साँस में सारी गोपियों को सारा संदेश (ज्ञानोपदेश) दे जाते हैं जबकि प्रियप्रवास' में पहले समागतों को प्रबोधते हुयेनंद यशोदा की दुःखदशा का श्रवण करते हैं। यशोदा ने उद्धव से जो कुछ कहा है वह इतना मार्मिक, मनोवैज्ञानिक एवं सीधे हृदय के उद्गार है जिन्हें सुनकर सहृदय-हृदय रो पड़ता है। वास्तव में प्रियपवास के यशोदा-विलाप ने विरीहणी माता का रुला-देनेवाला चित्र उपस्थित कर दिया है। इतनी तीव्रता है कि यशोदा के दुःख में दुखी हुये बिना रहा नहीं जाता। यशोदा की उक्तियाँ उनके दृष्टांत सभी अत्यन्त सरल हैं। कवि वहाँ पर और न गोपियों के प्रसंग में ही रीतिकालीन उहापद्धति द्वारा विरह की कोरी चमत्कार युक्त तीव्रता व्यंजित की है—जैसी कि 'उद्धवशतक' में रत्नाकर जी ने किया है।—

"सूखि जाति स्याही लेखनी के नेकु डंक लागे अंक लागे कागद बररिबरि जात हैं"—रत्नाकरजी और 'हरिऔधजी' दोनों दो युगों के वासी थे जैसाकि हम ऊपर भी दिखा आये हैं इसलिये दोनों के रचना उद्देश्य उद्दविपक शैली और कुछ हद तक कथानकमें भी अंतर है। रत्नाकर जी मध्यकालीन प्रवृत्ति के कवि थे वे भक्त थे इसलिये उन्होंने उद्धव प्रसंग को जैसे का तैसा अपनाकर अपना उद्देश्यसगुणमंडन और निर्गुण खंडन ही रक्खा। जबकि हरिऔधजी आधुनिक सुधार

वादी, Reasonable बात-बात में कार्य का कारण ढूँढ़ने वाले युग में रहते थे इसलिये उनका उद्देश्य खड़ी बोली का अतुकाँत महाकाव्य रचने के साथ गाँधीवादी एवं सुधारवादी तथा कार्य-कारण की दृष्टि को लेकर चला। आर्य-समाजी होने के कारण अथवा आधुनिक प्रवृत्ति के कारण उन्होंने कृष्ण के क्रियाकलापों को दैवी रूप न देकर महान आदर्श पुरुष का रूप दिया है। किसी भी प्रसंग को इस प्रकार से नहीं रक्खा जिसमें कोई व्यापार इसलिये संभव हुआ कि वह कृष्ण से संबंधित था अपितु उसी ढंग से बदल कर रखा है। प्राचीन चली हुई धारणा के विरुद्ध भी न पड़े और व्यापार का मानव बुद्धि से परे भी कोई कारण न हो। इसीलिये उन्होंने तृणा वर्त आदि राक्षसों को राक्षस न दिखाकर आँधी आदि के रूप में ही दिखाया है। इतना ही कह कर हम प्रसंग से दूर नहीं होना चाहते।

उद्देश्य विभिन्नता के कारण उद्धवशतक में सगुण निर्गुण को लेकर जहाँ रत्नाकरजी की गोपियों और उद्धव के बीच लाभ ले आधों आध होती है वहाँ उद्धव गोपियों और ग्वालाओं आदि की कहानी सुनते हैं और प्रायः चुप ही रहते हैं। गोपियों को केवल एक जगह वे हमें ज्ञानोपदेश देते पाये जाते हैं और वह भी केवल एक ही छंद में देखिये:—

धीरे-धीरे श्रमित—मनको योग-द्वारा संभालो।
स्वार्थों को भी जगति हित के अर्थ सानंद त्यागो।
भूलो मोहो न तुम लखके वासना—मूर्तियों को।
यों होवेगा दुःखशमन औ शांति न्यारी मिलेगी।

यहाँ पर भी हरिऔध जी ने 'जगत हित' को ही महत्त्व दिया है। ऊधौ की यह बात गोपियों के मर्म पर आघात तो करती है लेकिन वे ऊधौ को भला बुरा नहीं कहती। अपने सरल स्त्री स्वाभाव से सीधे कहती हैं कि जिस पथ में भूरि—ज्ञानी मनीषी भी भटक जाते हैं वह हम जैसी अज्ञान-अबलाओं को कैसे सुगम होगा। ऊधौ,

तुम्हीं बताओ जो नाव छोटे से तालाब में ही डूब जाती है वह इतने सागर को कैसे पार करेगीः—

हो जाते हैं भ्रमित जिसमें भूरि-ज्ञानी—मनीषी,
कैसे होगा सुगम पथ सो मंद-धरी नारियों को।
छोटे-छोटे सरिस—सरमें डूबती जो तरी है,
सो भू व्यापी सलिल-निधि के मध्य कैसे तिरेगी॥

कुछ थोड़ी सी स्त्री सुलभ स्वाभाविक बातें कह कर वे चुप हो जाती हैं। वहाँ पर यह नौबत नहीं आती कि "चुप रहौ ऊधौ, पथ सूधौ मथुरा कौ गहौ, कहौ ना कहानी जो गह कहि आये हौ" आदि। वे केवल कृष्ण का गुणबखान करने लगती हैं। और कहती हैं कि भोली भाली ब्रज अवनि योग की रतियों को क्या जाने ?। शोक संतापित गोपिकायें कहती हैं कि तुम एक बार हमारे ऊपर दया कर के अवश्य मथुरा जाओ और कृष्ण को लाकर हमें दिखादो। और फिर कृष्ण का गुणबखान करने लगती हैं ऊधौ चुप ही रहते हैं। अंत में उद्धव राधा को कृष्ण का संदेश सुनाते हैं जिसमें कहीं भी निर्गुण का प्रतिपादन नहीं किया गया। सीधे एवं स्वाभाविक रूप में अपनी परिस्थितियों को न आ सकने का कारण बताते हुये आत्म-हित से लोक हित की महत्ता स्थापित करते हैं। वास्तव में बात ऐसी है कि हरि-औधजी ने योग और भक्ति को दूसरे ही ढंग से प्रतिपादित (Interpret) किया है उनका योग और भक्ति सबका तात्पर्य लोकहित एवं लोक प्रेम से है। इसीलिये सब कुछ इसी दृष्टि से वर्णित किया गया है। राधा ने नवधा भक्ति की जो परिभाषा दी है वह भी लोकहित को ही लेकर। जबकि रत्नाकरजी ने उसी पुराने चले आते हुये रूप को ही अपनाया है।

यहाँ तक तो दोनों पर हमने विषय प्रतिपादन की दृष्टि से कुछ प्रकाश डालने का प्रयास किया है अब रस की दृष्टि से कुछ विचार करना आवश्यक है। यह तो कहने की आवश्यकता ही नहीं कि

दोनों ही करुण विप्रलंभ प्रधान हैं। विरह की जो दस दशायें आचार्यों ने बतलाई हैं उनको प्रियप्रवास के उद्धव प्रसंग में तो खोजने पर पा लेते हैं लेकिन 'उद्धवशतक' में नहीं। जहाँ तक विरह की तीव्रता का प्रश्न है विरह की तीव्रता दोनों में ही अपनी सीमा को पहुँची हुई है। लेकिन अगर तीव्रता की परिभाषा के लिये ऊहात्मक पद्धति को अपना कर हाय हाय कराना आवश्यक हो तब प्रियप्रवास प्रसंग का स्थान हरिऔधजी की लोकहित की भावना के कारण अवश्य ही निम्न ठहरेगा। लेकिन विरह की स्वाभाविक और व्यापकता जितनी प्रियप्रवास के प्रसंग में पाई जाती है उतनी 'उद्धवशतक' में नहीं। प्रियप्रवास का विरह लोक व्यापी अधिक है और उद्धवशतक का ऐकान्तिक अधिक। प्रियप्रवास की राधा लोकोत्तर प्रेमिका है प्रारंभ में उसका प्रेम वासनाजन्य है लेकिन अंत में वह शुद्ध प्रणयकी उच्च अवस्था को प्राप्त होता है। सारा संसार कृष्णमय दिखाई देने लगता है। वैसे विरह की स्वाभाविकता एवं तीव्रता दोनों ही उद्धवशतक में भी प्रचुर मात्रा में हैं लेकिन रीतिकालीन चमत्कार प्रियता के कारण कहीं २ कुछ दोष आ जाता है।

भाषा शैली की दृष्टि से यदि दोनों को तुला में रखा जाय तो दोनों ही को हम अलग दिशाओं में जाते हुए पावेंगे। उद्धवशतक की भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा है। ब्रजभाषा का ऐसा रूप अन्य किसी कवि में शायद ही मिले। ब्रजभाषा का जो रूप आचार्य केशव द्वारा कुछ स्थिर किया जाकर विहारी आदि द्वारा बढ़ाया गया वह रत्नाकर जी ने पूर्ण कर दिया। भाषा सर्वथा भावानुकूल एवं परिमार्जित मुहावरों के प्रयोग से अत्यन्त चारु बन पड़ी है। अनुप्रासयुक्त, अतरंग संगीत की ध्वनि, विहारी का सरस वाग्वैदग्ध्य आदि उनकी भाषा के कुछ प्रमुख गुण हैं। शास्त्रीय दृष्टि से देखने पर भी उद्धवशतक की भाषा उपयुक्त ही है। कोमल वृत्तियों युक्त ओज, माधुर्य एवं प्रसाद गुण समाहित है। प्रिय प्रवास की भाषा आधुनिक खड़ी बोली का सुन्दर रूप उपस्थित करती है। संस्कृति

के शब्दों का उचित रूप में उपयोग करके इतना अच्छा रूप दिया है कि उसे पढ़कर अनायास ही जयदेव की कोमल कांत पदावली की याद आ जाती है। अतुकान्त होने पर भी उसमें इतनी ध्वनि है कि किसी भी तुकान्त काव्य का सा आनंद मिलता है। अतुकांत होने के कारण सांस्कृति वार्णिक छंदों द्रुतिविलम्बति, शार्दूलविक्रीड़ित मंदाक्रांता मालिनी आदि छंदों का प्रयोग किया है। जबकि उद्धव-शतक में व्रजभाषा के उपयुक्त कवित्त या घनाक्षरी का प्रयोग किया है। काव्य कौशल की दृष्टि से भी दोनों ही उच्चकोटि में रखने योग्य हैं दोनों ही का अपना अपना सौन्दर्य है। कहने का तात्पर्य है कि उद्धवशतक काव्य कला मध्यकालीन प्रवृत्तियों के अधिक समीप है और प्रियप्रवास आधुनिक काल की प्रियप्रवास में कथावस्तु को छोड कर प्रायः सभी वस्तुएँ नवीन एवं आधुनिक हैं जब कि उद्धव-शतक मे सभी मध्यकालीन रंग मे रंगी हुई।

प्रश्न १२ :—'रत्नाकर जी के जीवन व्यापी शृंगार मे छिपी हुई दुःख की छाया ही मानो 'उद्धवशतक' का केन्द्र पाकर साकार हो गई है।" इस कथन का सार्थकता प्रमाणित कीजिये।

हल :—यद्यपि 'उद्धवशतक' रत्नाकर जी की अन्तिम कृति नहीं, फिर भी यह रत्नाकर जी की सर्व श्रेष्ठ कृत कहा जाता है। इसकी संगीत लहरी मन-मृग को अपने जाल में इस प्रकार फँसा लेती है। कि फिर ज्यों निकलने को चाहता है त्यों त्यों उलझता जाता है। उद्धवशतक का अवलोकन करते समय मन एक अलौकिक भावधारा में निमग्न हो जाता है। उक्तियों की अपूर्वता और नवीनता सूर के पदों का बरबस स्मरण करा देती हैं। बाबू श्याम सुन्दरदास जी ने ठीक ही कहा है, कि रत्नाकर जी की इससे अधिक तन्मयी काव्य साधना दूसरी नहीं मिलती।" यद्यपि उद्धवशतक विप्रलम्भ शृंगार का काव्य है। लेकिन वह विप्रलम्भ करुण की सीमा को प्राप्त हुआ है एक एक कवित्त हृदय के तारों को स्पर्श करता है। उनमें एक गहरी

अनुभूत टीस छिपी हुई प्रतीत होती है। श्रृंगार से उक्त होने पर भी उसमे एक मीठी कसक का अनुभव पाठक तथा श्रोता को सहज ही होने लगता है। ठीक भी है किसी ने सच ही कहा है "Our sweetest songs are those that tell us saddest stories.

श्रृंगारिक काव्य ही अधिकतर रत्नाकर जी ने लिखा है। क्यों कि उनका जीवन ही श्रृंगारमय था। वे स्वभाव से अत्यन्त चपल एवं विनोदी लक्ष्मी के कृपापात्र तथा एक अच्छी खासी रसिक मंडली के सदस्य थे। लेकिन गहराई से देखा जाय तो रत्नाकर जी भी श्रृंगारिक कविता में एक टीस की धारा बहती मिलती है। इसका कारण रत्नाकर जी का जीवन ही था। कहा जाता है कि रत्नाकर जी को प्रणय सुख प्राप्त नहीं हो सका। विवाह शायद दो बार होने पर भी उनकी प्रेयसी उन्हें अकेला ही छोड़ गई।

इस कारण उनके जीवन में विरह ने एक प्रमुख स्थान प्राप्त कर रक्खा था। उन्हें यह पूर्ण अनुभव था कि वियोग क्या वस्तु होता है और वियोग में प्रेमी प्रेमिका की क्या दशा होती है। यही कारण है कि उद्धवशतक की रचना इतनी मर्मस्पर्शी हो सकी है। क्योंकि एक अनुभूत हृदय की वेदना थी जिसे रत्नाकर जी उद्धवशतक के माध्यम से व्यक्त करके सजीव रूप दे रहे थे।

जैसा कि हमने ऊपर लिखा है। रत्नाकर जी ने अधिकांश श्रृंगारी कविता ही लिखी है। श्रृंगार लहरी, हिंडोला आदि काव्यों में अच्छे से अच्छे श्रृंगार के उदाहरण पाये जा सकते हैं। एकाद उदाहरण देखिये :—

(१) कबहुँ लतनि में लगि कोउ अन्ग उघारति सारी,
चौंकि चकाइ तुरत तिहि सकुचि सम्हारति प्यारी।
लखति लाल की ओर लाज लैसित नैननि सौं,
कछु जाननि की चाह जाति जानी सैननि सौं।

राधा कृष्ण ललिता विशाखा के साथ वन उपवन में कलोलें करते फिरते हैं। कभी किसी लता से उलझ कर साढ़ी अलग हो जाती है तो प्यारी चौंककर शर्मिंदा होकर संभालती है। कभी नेत्रों की कोर से लाल को देखती है। फिर हिंडौले पर जा बैठते हैं। वहाँ पर क्या हाल होता है देखिऐ :—

एक बेर निज ओर पेंग की होत उँचाई,
सम्हारि न सकी हमानि सरकि प्रीतमउर आई।
लियों लाल भरि अङ्क रङ्क संपति जनु पाई,
भौचक सी ह्वै रही कही मुख बातन आई।

"हिंडौला"

हिंडोले के एक ओर झुक जाने से सयानी अपने को संभाल नहीं सकती और प्रीतम के गले से लिपट जाती है। और भौचक्की सी रह जाती है। पाठक देखेंगे कि उपर्युक्त दोनों शृंगारिक छन्दों में भावना की कोई गहनता नहीं पाई जाती। वहाँ केवल वस्तु तथ्य अपनी वास्तविकता लिये हुये हैं। यहाँ वह मर्मस्पर्शिता नहीं पाई जाती जो उद्धवशतक के कवित्तों में मिलती है। उद्धवशतक की रचना में हृदय के सुप्त भावों को जगाने की क्षमता है। कुछ छन्द तो इतने तन्मयता पूर्ण हैं। कि पाठक कुछ देर को अपने आपको ही भूल जाता है। इसका कारण उसकी वास्तविक गहराई एवं मनोवैज्ञानिक तथा स्वाभाविकता है। उद्धवशतक के कथनों में हमें आशिक माशूकों का निर्लज्जता प्रकट करने वाला हाय हाय जैसा प्रलाप नहीं मिलता प्रत्येक शब्द एक अभिभूत हृदय की उपज है। रत्नाकर जी के जीवन में शृंगार की तो अधिकता थी लेकिन वह शृंगार भी अभावमय था उसी अभाव के कारण रत्नाकर जी उद्धवशतक में जान फूँक सके हैं। उसका प्रत्येक छन्द गतिमान है वह बोलने की शक्ति से युक्त है अपना भाव वह स्वयं प्रकट करने की क्षमता रखता है।

कृष्ण यमुना स्नान से लौटकर जाते हैं लेकिन साथ में एक आफत लेकर लौटते हैं वह आफत कैसी है और उसके फन्दे में पड़कर मनुष्य की क्या दशा होती है इसे रत्नाकर जी का भावुक हृदय बहुत अच्छी तरह समझता था। ऐसे समय में जब कि मनुष्य विरह विदग्ध हो उसकी वाणी रुक जाती है कन्ठ अवरुद्ध हो जाता है। इसे तो हर एक मनुष्य जानता है। लेकिन उस समय आँखों के अश्रु ही सारी बात कह जाते हैं इसे रत्नाकर जैसे हृदय के पारखी ही जानते थे। देखिये कहना तो चाहते हैं लेकिन उनकी यह समझ में ही नहीं आता कि आखिर उन्हें क्या कहना है कैसे कहना है। इसी असमंजस में पड़े है। कि नेत्रों से अश्रुधारा वह चलती है और बात खुल जाती है—

कहा कहैं ऊधौ सौं, कहैं हूँ तो कहाँ लौं कहैं,
कैसे कहैं, कहैं पुनि कौनसी उठानि तैं।
तौलौं अधिकाई तै उमगि कंठ आई भिचि,
नीर ह्वै बहन लागी बात अँखियाँन तैं।

कृष्ण का कंठ अवरुद्ध है, रुँआसे हो रहे हैं और ऊधौ से गोपियों के लिये संदेश कह रहे हैं लेकिन कह नहीं पाते। उस समय उनकी क्या दशा होती है इसे एक विरही हृदय ही अच्छी तरह जान सकता है—

विरह व्यथा की कथा अकथ अथाह महा,
कहत बनै न जो प्रवीन सुकवीन सौं।
कहै रत्नाकर बुझावन लगे ज्यों कान्ह
ऊधौं कोकहन, हेत ब्रज-जुवतीनि सौं॥
गहबरि आयौ गरौ भभरि अचानक त्यौं
प्रेम परपो चपल चुचाय पुतरीनि सौं।
नेकु कही बैंननि, अनेक कही नैननि सौं,
रही-सही सोउ कहि दीनी हिचकीनि सौं।

कृष्ण एकाध वाक्य कह पाते हैं और कहें भी कैसे कहा जाय जब तो कहैं, वे तो रोने लगते हैं और हिचकी आने लगती हैं।

अपने प्रिय के पास संदेशा भेज रहे हैं। ऊधौ रथ में सवार हैं उन्हें गोकुल को भेज रहे हैं लेकिन हृदय को धैर्य नहीं होता और कृष्ण कुछ कहने की चाह में रथ के पीछे ही लगे जाते हैं यद्यपि कुछ कह नहीं पाते—

सीरे तपे विविधि संदेसनि की बात "नि कीं
घातनि की झौंक में लगे ही चले जात हैं"

एक २ शब्द मन की स्थिति का सूचक है। मनुष्य कह नही पाता तो इसी आशा में पीछा करता जाता है कि अभी मुझे कुछ कहना है। कितना मार्मिक मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक चित्र रत्नाकर जी ने प्रस्तुत किया है। अनुकूल शब्दावली के प्रयोग के तो जैसे रसोत्कर्ष को दूना ही कर दिया है। इधर कृष्ण का तो यह हाल है। अब कुछ गोपियों की क्या दशा है उस पर भी कुछ दृष्टि डालिये। गोपियों की दशा का पता इसी से चल जाता है कि उद्धव की गोकुल पहुँचने से पहले ही क्या दशा होती है वे सब कुछ ज्ञान गठरी भूल जाते हैं और—

हौ हौं ज्ञान के गुमान घटि जान लगे
जोग के विधान ध्यान हूँ तैं टरिवै लगे।
नैननि मे नीर रोम सकल सकल सरीर छयौ
प्रेम-अद्‌भुत सुख सूझि परिवै लगे।
गोकुल के गाँव की गली में पग पारत ही
भूमि के प्रभाव औरेभरिवै लगे।
ज्ञान मारतंड के सुखाये मनु मानस कौ
सरस सुखाये घनश्याम करिवै लगै।

गोकुल में पहुँचते ही उन ऊधो का जिन्हें सुख दुख का कोई अनुभव नहीं होता गोपियों की दशा देखकर अजीव हाल हो जाता है। इससे अधिक गोपियों के दुःख की व्यंजना और क्या हो सकती है। ऊधौ के नंदबाबा के यहाँ पहुँचने पर गोपियों की तीव्रता का कैसा सच्चा एवं स्वाभाविक चित्र रत्नाकर जी खींच सके हैं कहते नहीं बनाता। गोपियों की भीड़ ऊधौं को चारों ओर से घेर लेती हैं और फिर वे गोपियाँ जो पीछे होने के कारण पत्रिका नहीं देख पाती, पंजो के सहारे खड़ी होकर उझकती हैं। पंजों के बल खड़े होने का कितना स्वाभाविक उत्कंठा-युक्त व्यापार है।

कहे रत्नाकर ग्वालिनि की झौंरि झौंरि
दौरि दौरि नंद पौरि आवन तबै लगीं।
उझकि उझकि पद कंजनि के पंजनि पै
पेखि पेखि पाती छाती छोहनि छ्वै लगीं।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा,
हमकौं लिख्यौ है कहा, कहन सबै लगीं।

गोपियाँ इस डर से कि कहीं कोई अशुभ संदेश नहीं सुनना पड़े पूछने की इच्छा रखते हुए भी नहीं पूछ पाती और मन मसोस कर रह जाती हैं।—

देखिये—

साहस कै कछुक उमाहि पूछिबै को ठाहि
चाहि उत गोपिका कराहि रहि जाति हैं।

ठीक इसी प्रकार की भावना राम को वन में छोड़कर आये हुये सुमंत को देखकर अयोध्या के पुरवासी लोगों के मन में भी श्री मैथिलीशरण ने साकेत में दिखाया है—

"उत्तर में 'न' सुनेत कहीं।" इसलिये राम आये कि नहीं॥
पूछ न सके सचिव वर। पुरवासी मौन रहे डर से॥

विरह-दुःख के समय की मानसिक स्थिति की परख जितनी अधिक स्वयं अनुभूत हृदय को होती है उतनी अनुभूत को नहीं। रत्नाकर जी का जीवन शृंगार से अथवा यों कहें कि वियोग शृंगार से आप्लावित था तो अत्युक्ति नहीं होगी। और देखा जाता है कि जब मन में भावनायें गहन होती जाती हैं तो फिर भावधारा बिना फूटे रह नहीं पाती और वाणी उसे स्वयं व्यक्त करने में लग पड़ती है। ठीक इसी प्रकार से उद्धव शतक की रचना रत्नाकर जी ने की। उनके मन में जो विरह की भावनायें गहन होती जा रही थीं वे व्यक्त होने को व्याकुल थीं। ठीक उसी समय रत्नाकर जी को कृष्ण गोपी वियोग का ध्यान हुआ और अपने दुःख को व्यक्त करने का उन्हें माध्यम मिल गया। यही करण है कि उद्धवशतक के वियोग वर्णन में इनकी तीव्रता, इतनी मर्मस्पर्शिता तथा स्वाभाविकता पाई जाती है। इसीलिये बाबू श्यामसुन्दर दास का यह कथन सत्य ही कि "रत्नाकर" जी के जीवन व्यापी शृंगार में छिपी हुई दुःख की छाया ही उद्धव शतक में अवतरित हुई है।

हमारा आलोचनात्मक प्रकाशन

(१) प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड
डा० रांगेय राघव एम० ए०, पी० एच० डी०, मूल्य ४)

(२) महाकवि-निराला काव्यकला कृतियां
श्री विश्वभरनाथ एम० ए० मूल्य २।)

(३) रीतिकालीन कविता एवं शृङ्गार रस का विवेचन
डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी एम० ए०, पी०एच० डी०, सा०रत्न

(४) हिन्दी महाकाव्य एवं महाकाव्यकार
लेखक—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए० मूल्ल २।)

(५) कविवर सेनापति और उनका कवित्त रत्नाकर
डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, एम०ए०, पी-एच० डी० मूल्य १॥)

(६) वृन्दावनलाल वर्मा और उनकी उपन्यास-कला
प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए० मूल्ल १॥)

(७) हिन्दी साहित्य के प्रमुख वाद और उनके प्रवर्तक—
लेखक पं० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय एम० ए०, साहित्य रत्न
मूल्य १॥) पृष्ठ २०४

(८) सूर का भ्रमरगीत साहित्य (भ्रमरगीत सार समीक्षा)
श्री सुरेशचन्द्र गुप्त एम० ए० मूल्य १॥)

(९) काव्य श्री (भाग १) रस—डा० सुधीन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०, पृष्ठ संख्या १०० मूल्य ॥)

(१०) हिन्दी एकांकी एवं एकांकीकार—लेखक प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए० पृष्ठ संख्या २२४ मूल्य सजिल्द केवल १॥)

